उवओगो विमस्सो

(उपयोग विमर्श)

लेखक

डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़

शास्त्री, आचार्य (संस्कृत साहित्य, प्राकृत एवं जैनागम, पालि), बी.एड.,

नेट जेआरएफ, पीएचडी

प्रकाशक

सन्मति प्राच्य शोध संस्थान

(रजि.अधिनियम 1860 के अंतर्गत नो क्र.महा/571/88/नागपुर)

कस्तूरबा वाचनालय के पास, सदर नागपुर-440001

ISBN 81-85783-51-11

पुस्तक का नाम	–	उवओगो विमस्सो (उपयोग विमर्श)
लेखक	–	डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़
वर्ष	–	२०१९
संस्करण	–	प्रथम
मूल्य	–	१००
सर्मपण	–	परम पूज्यनीय माताजी एवं पिताजी के जीवन के लिये सादर समर्पित
प्रकाशक	–	सन्मति प्राच्य शोध संस्थान (रजि.अधिनियम 1860 के अंतर्गत नो क्र.महा/571/88/नागपुर) कस्तूरबा वाचनालय के पास, सदर नागपुर-440001
मुद्रक	–	गणेश प्रिंटिंग प्रेस, देशबंधु काम्प्लेक्स, भोपाल

प्राक्कथन

जीवन का परम लक्ष्य सुख और आनन्द है। प्रत्येक व्यक्ति के पास सुख और आनन्द की निधि है। मात्र आवश्यकता है पहचानने की। जिसने अपने भीतर के सुख और आनन्द को पहचान लिया है, वह सदा प्रसन्न रहा है। **उपयोग विमर्श** पुस्तक के माध्यम से आत्मा में विद्यमान ज्ञान और दर्शन की चर्चा विस्तृत रूप से की गई है। यह कृति मूल रूप से प्राकृत भाषा में लिखी गई। जिसका आधार दिगम्बर जैन आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ हैं। पाठकों की सुविधा के लिये इसका हिन्दी अनुवाद भी साथ में प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे पाठक पढ़कर आत्मा के स्वरूप का समझ सकें और अपने अंदर विद्यमान शक्तियों को पहचानकर उनके प्रकट करने के प्रयास को दृढ़ करें।

ज्ञान और दर्शन आत्मा के अविना भाव है अर्थात् प्रत्येक आत्मा के साथ ज्ञान और दर्शन होगा। संसार में कोई भी आत्मा ऐसी नहीं है जिसमें ज्ञान और दर्शन नहीं है। क्योंकि उपयोगो लक्षणम् इस सूत्र के माध्यम से यह सिद्ध हो जाता है कि जीव का लक्षण उपयोग है और वह उपयोग ज्ञान और दर्शन रूप है। जीव अर्थात् चेतना। जिसमें चेतना है वह जीव है। इससे सिद्ध होता है कि चेतना को बताने वाले ज्ञान और दर्शन ये दो भाव-उपयोग है।

यह कृति आत्महित में निमित्त बनें एवं मैं स्वयं को आत्मकल्याण के लिये प्रवृत्त कर सकूँ, ऐसी भावना लेकर यह कृति आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ एवं भावना भाता हूँ कि आप सभी का भी कल्याण हो, मार्ग प्रशस्त हो। सुधीजन इसमें जो भी त्रुटियों हुई हो उनको परिमार्जित करने की कृपा करें।

आयतस्तूः
आशीष कुमार जैन आचार्य,शाहगढ़

प्रस्तावना

वस्तु के प्रति **उपयुज्** होता है वा वस्तु स्वरूप का परिज्ञान करने के लिये प्रेरित होता है उसे उपयोग कहते हैं। इसमें **'अकर्तरि च कारके'** से **घञ्** प्रत्यय हुआ। अथवा आत्मा के **'उप'** - समीप **'युज्'** लगना उपयोग है। यहाँ भाववाची शब्द में घञ् प्रत्यय किया गया है। उपयोग सामान्य से ज्ञानदर्शनरूप है वही आत्मा का लक्षण है। कर्मों के क्षय और क्षयोपशम के निमित्त से उत्पद्यमान वा बहिरंग और अंतरंग दोनों प्रकार के निमित्तों से उत्पद्यमान चैतन्य के अन्वयी अर्थात् चैतन्य को छोड़कर अन्यत्र नहीं रहने वाले जीव के परिणामों को **उपयोग** कहते हैं।[१,२] उपयोग और जीव में लक्ष्य-लक्षण की अपेक्षा भेद है। उपयोग लक्षण है और जीव लक्ष्य है। अतः जीव का लक्षण होने से उपयोग आत्मस्वरूप है।

लक्षण का लक्षण-

व्यतिकीर्ण वस्तु व्यावृत्तिर्हेतुर्लक्षणम्।।[३]

मिली हुई अनेक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु को पृथक् करने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं। जैसे अग्नि में उष्णता (आत्मभूत), दण्डीपुरुष का दण्ड (अनात्मभूत)।

उपयोग का लक्षण-

चैतन्यानुविधायी परिणामः उपयोगः।[४]

चैतन्य का अनुविधायी परिणाम ही उपयोग है।

वत्थुणिमित्तो भावो जादो जीवस्स होदि उवओगो।।[५]

जीव का जो भाव वस्तु के ग्रहण करने के लिये प्रवृत्त होता है वही उपयोग है।

प्रणिधानम् उपयोगः परिणामः इत्यनर्थान्तरम्।।[६]

---

१. सर्वार्थसिद्धि

२. तत्त्वार्थ सूत्र

३. न्यायदीपिका

५. पंचसंग्रह/प्रा.१/१७८

६. राजवार्तिक/१/१/३२२

प्रणिधान, उपयोग, परिणाम ये सब एकार्थवाची है।

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।।[७]

जीव उपयोगमयी, अमूर्त्तिक, कर्त्ता, स्वदेहपरिणाम, भोक्ता, संसारी, सिद्ध और ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

उपयोग के भेद-

उवओगो दुवियप्पो दंसण-णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु-अचक्खु-ओही-दंसणमध केवलं णेयं।।[८]

उपयोग दो प्रकार का है दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग। दर्शनोपयोग अनाकार है और ज्ञानोपयोग साकार है। विशेष ज्ञान को साकार और सत्ता अवलोकन मात्र को निराकार उपयोग कहते हैं। अर्थात् वस्तु के विशेष को न जानकर सामान्य सत्ता का अवलोकन दर्शन है और विशेष का जानना ज्ञान है। छद्मस्थों के प्रथम दर्शन और तदनन्तर ज्ञान होता है, परन्तु निरावरण अर्हत्, सिद्ध और संयोग केवलियों के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग एक साथ होते हैं।

ज्ञानोपयोग- ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम वा क्षय से उत्पन्न आत्मा के सविकल्प व्यापार वा परिणति को ज्ञानोपयोग कहते हैं।

दर्शनोपयोग- दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम वा क्षय से उत्पन्न निराकार सत्ता मात्र ग्राही उपयोगकर चेतना की परिणति विशेष को दर्शनोपयोग कहते हैं। अर्थात् विषय-विषयी के सन्निपात (संयोग) को दर्शन कहते हैं। इसमें वस्तु के विशेष आकार आदि का ग्रहण नहीं होता।

दर्शनोपयोग के भेद- दर्शनोपयोग के चार भेद हैं- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

चक्षुदर्शन- चक्षु-इंद्रिय से उत्पन्न मतिज्ञान के पूर्व, चक्षुदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से नेत्र द्वारा मूर्तिक पदार्थ की सत्ता मात्र का विकल्प रहित ग्रहण को चक्षुदर्शन कहते हैं।

---

७. द्रव्यसंग्रह/१/२

८. द्रव्यसंग्रह/१/३

अचक्षु दर्शन- चक्षु-इंद्रिय को छोड़कर अचक्षुदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से अन्य चार इन्द्रियों तथा मन द्वारा मूर्तिक पदार्थों की सत्ता मात्र का विकल्प रहित ग्रहण को अचक्षुदर्शन कहते हैं।

अवधि दर्शन- अवधिज्ञान के पूर्व अवधिदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक मूर्तिक पदार्थ की सत्तामात्र का विकल्परहित ग्रहण को अवधिदर्शन कहते हैं।

केवल दर्शन- केवलज्ञान के साथ के केवलदर्शनावरण कर्म के क्षय से लोक और अलोक की मूर्तिक और अमूर्तिक सभी वस्तुओं का एक ही समय में विकल्परहित ग्रहण को केवलदर्शन कहते हैं।

ज्ञानोपयोग के भेद-

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदओही अणाणणाणाणी।
मणपज्जयकेवलमवि, पच्चक्ख परोक्खभयं च॥[१०]

वह ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है- पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान और तीन प्रकार मिथ्याज्ञान। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान सम्यग्ज्ञान है। और कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कु-अवधिज्ञान मिथ्याज्ञान है। वह आठा प्रकार का ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्षप्रमाण है। अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान देशप्रत्यक्ष प्रमाण है और केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी प्रकार कुमति और कुश्रुत ये दोनों कुज्ञान परोक्ष प्रमाण है और कु-अवधि ज्ञान देश प्रत्यक्ष है। कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कु-अवधिज्ञान मिथ्यादृष्टियों के होते हैं शेष पाँच ज्ञान सम्यग्दृष्टियों के होते हैं। मन:पर्यय ज्ञान विशेष संयमी के तथा केवलज्ञान अरिहंत और सिद्ध परमेष्ठी भगवान को होता है।

मतिज्ञान- मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से इन्द्रिय और मन के निमित्त से जो पदार्थों का बोध होता है, जानकारी होती है उसे मतिज्ञान कहते हैं। स्पर्श आदि इन्द्रियों से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह इन्द्रियजन्य ज्ञान कहलाता है और मन से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को मनोजन्य ज्ञान कहते हैं। मतिज्ञान के पाँच भेद

---

९. सर्वार्थसिद्धि

१०. द्रव्यसंग्रह/१/१०

कहे गये हैं-

मतिस्मृतिः संज्ञाचिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।[११]

मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता और अभिनिबोध मतिज्ञान के नामान्तर है।

१. मति- यह ज्ञान इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होता है तथा वर्तमान काल का विषय करता है।

२. स्मृति- यह पूर्वानुभूत वस्तु का स्मरण कराता है अतः जातिस्मरण ज्ञान स्मृतिज्ञान है।

३. संज्ञा- पूर्वानुभूत और वर्तमान में अनुभव या प्रत्यक्ष वस्तु को देखकर जो ज्ञान होता है वह संज्ञा नामक मतिज्ञान कहलाता है। इस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान भी कहते हैं।

४. चिंता- जिसके होने पर जो होता है वा जिसके नहीं होने पर नहीं होता है इस प्रकार के ज्ञान को चिंता या तर्क कहते हैं। जैसे अग्नि के होने पर ही धुँआ होता है, अग्नि के बिना नहीं।

५. अभिनिबोध- चिंता वा तर्कणा के बाद जो ज्ञान होता है वह अभिनिबोध है। जैसे- यहाँ अग्नि है क्योंकि धुँआ है ऐसा साधन से होने वाले साध्य के ज्ञान को अभिनिबोध या अनुमान कहते हैं।

मतिज्ञान का विकास क्रम से होता है इसलिये इसके अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद कहे गये हैं-

१. अवग्रह- किसी वस्तु को देखकर, स्पर्शकर, सुनकर, चखकर, सूँघकर, यह कुछ है ऐसा ज्ञान अवग्रह है।

२. ईहा- अवग्रह के बाद विशेष जानने की इच्छा होती है वह ईहा ज्ञान है। जैसे- जो सफेद दिख रहा है या कोई शब्द आ रहा है वह क्या है? वस्त्र है इत्यादि रूप से जानने की इच्छा प्रगट होना ईहा ज्ञान है।

३. अवाय- ईहाज्ञान के बाद उस जानी हुयी वस्तु का निर्णय कर लेना जैसा यह सफेद वस्तु ध्वजा है या बगुला है, यह अवाय ज्ञान है।

४. धारणा- अवायज्ञान से निर्मितवस्तु को कालान्तर में नहीं भूलना धारणा है। मिथ्यात्वकर्म के उदय से ज्ञान मिथ्या अथवा कुज्ञान होते हैं।

---

११. तत्त्वार्थ सूत्र

१. कुमतिज्ञान- इन्द्रिय और मन की सहायता से वस्तु को जानने वाला मिथ्याज्ञान कुमतिज्ञान है।

२. कुश्रुतज्ञान- कुमति के द्वारा जाने हुये पदार्थ के विशेष्ज्ञ को जानने वाला मिथ्याज्ञान कुश्रुत है।

३. कु-अवधिज्ञान- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा रूपी पदार्थों का ज्ञाता मिथ्याज्ञान कु-अवधिज्ञान है।

श्रुतज्ञान- मतिज्ञान के द्वारा जाने हुये पदार्थों को विशेषरूप से जानने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान है।

अवधिज्ञान- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है अवधिज्ञान है।

मन:पर्ययज्ञान- मन:पर्ययज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा दूसरे के मन में स्थित सरल और गूढ रूपी-पदार्थों को जानने वाले ज्ञान को मन:पर्ययज्ञान कहते हैं।

केवलज्ञान- केवलज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न ज्ञान त्रिकालवर्ती सारे पदार्थों तथा उनकी अनंत गुण और अनंत पर्यायों को जो एक साथ जानता है उसको केवलज्ञान कहते हैं।

सामान्य-विशेष गुणों का कथन-

कथन करने की पद्धति दो प्रकार से सामान्य और विशेष। सामान्य गुण से तात्पर्य है जो सम्पूर्ण द्रव्य में पाया जाता है वह सामान्य है। जैसे- जितने भी जीव है सभी में जीवत्व पाया जाता है। विशेष गुण से तात्पर्य है जो एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से पृथक् करें उसे विशेष गुण कहते हैं। जैसे- पुरुष, स्त्री, तिर्यञ्च इत्यादि। सामान्य और विशेष गुणों की विवक्षा द्वारा वस्तु को जानते हैं। इस विविक्षा को नय द्वारा और अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

नय का लक्षण-प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नयः श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्त्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः।।[१२]

---

१२. आलापपद्धति/१८१

प्रमाण के द्वारा सम्यक् प्रकार ग्रहण की गई वस्तु के एक धर्म अर्थात् अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। अथवा श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं। ज्ञाता के अभिप्राया को नय कहते हैं। अथ्ज्ञवा जो नाना स्वभावों से हटाकर किसी एक स्वभाव में वस्तु को प्राप्त कराता है वह नय है। नय को दो भागों में विभक्त किया है- व्यवहार नय और निश्चय नय।

निश्चय नय-

भेदोपचारितया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः॥२०५॥[१३]

भेद और उपचार से वस्तु का व्यवहार करता है वह व्यवहार नय है।

व्यवहार नय-

अभेदनानुचारितया वस्तुनिश्चीयत इति निश्चयः॥२०४॥[१४]

अभेद और अनुपचारिता नय से जो नय वस्तु का निश्चय करें वह निश्चय नय है। अतः भगवज्जिनेन्द्र ने सामान्य-विशेष और निश्चय-व्यवहार नय की दृष्टि को प्रदान करते हुये उपयोग के सन्दर्भ में कहा है।

अट्ठचदुणाण दंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं॥६॥[१५]

व्यवहार नय से जीव का लक्षण आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शनोपयोग है। यह सामान्य जीव का लक्षण है। इसमें संसारी मुक्त एकेन्द्रिय आदि जीव के भेदों की विवक्षा नहीं है। परन्तु शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध अखण्ड केवलज्ञान और दर्शन ही जीव का लक्षण है।

चेतना की परिणति विशेष का नाम उपयोग है। चेतना सामान्य गुण है और ज्ञान-दर्शन ये दो इसकी पर्यायें एवं अवस्थायें है, इन्हीं को उपयोग कहते हैं। निमें दर्शन तो अन्तर्चित्प्रकाश का सामान्य प्रतिभास है और ज्ञान बाह्य पदार्थों के विशेष प्रतिभास को कहते हैं। सविकल्प होने के कारण व्याख्येय है। इन दोनों ही उपयोगों के अनेक भेद-प्रभेद है। यही उपयोग जब बाहर में शुभ या अशुभ पदार्थों का आश्रय करता है तो शुभ और अशुभ विकल्प रूप हो जाता है। और

---

१३. आलापपद्धति/२०३

१४. आलापपद्धति/२०४

१५. द्रव्यसंग्रह/६

जब केवल अन्तरात्मा का आश्रय करता है तो निर्विकल्प होने के कारण शुद्ध कहलाता है। शुभ-अशुभ उपयोग संसार का कारण है अतः परमार्थ से हेय है और शुद्धोपयोग मोक्ष व आनन्द का कारण है इसलिये उपादेय है।[१६]

अप्पा उवओगप्पा उवओगो णाणदंसणं भणिदो।
सो वि सुहो असुहो वा उवओगो अप्पणो होदि॥१५५॥[१७]

आत्मा उपयोगात्मक है उपयोग ज्ञान-दर्शन को कहा गया है। और आत्मा का वह उपयोग शुभ और अशुभ होता है।

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं॥[१८]

जिनवरदेव ने भाव तीन प्रकार के कहे हैं- शुभ भाव, अशुभ भाव और शुद्ध भाव।

इस ज्ञान-दर्शनात्मक उपयोग के दो भेद कहे हैं- शुद्ध और अशुद्ध। उनमें से शुद्ध उपयोग है निरुपयोग है और अशुद्ध उपयोग सोपयोग है। वह अशुद्धोपयोग शुभ और अशुभ दो भेदरूप है, क्योंकि उपराग विशुद्धिरूप व संक्लेशरूप दो प्रकार का है।

अशुभोपयोग का लक्षण-

विपरीतः पापस्य तु आस्रवहेतुं विजानीहि॥[१९]

जीवों पर दया तथा सम्यग्दर्शन ज्ञानरूपी उपयोग पुण्यकर्म के आस्रव के कारण है तथा इनके विपरीत निर्दयपना और मिथ्याज्ञान-दर्शनरूप उपयोग पापकर्म के आस्रव के कारण जानना चाहिये।

अशुभस्य आर्त्त-रौद्रम्॥[२०]

आर्त्त-रौद्र ध्यान अशुभभाव है।

---

१६. जैनेन्द्रसिद्धान्तकोष भाग-1/ पेज नं. ४२८
१७. प्रवचनसार/मूल/१५५
१८. भा.पा./मूल/७६
१९. मूलाचार/२३५
२०. भा.पा./मूल/७६
२१. प्रवचनसार/मूल/१५८

जिसका उपयोग विषय-कषायों में मग्न, कु-श्रुति, कुविचार और कुसंगति में लगा हुआ, उग्र है तथा उन्मार्ग में लगा हुआ उसके अशुभोपयोग है। शुभोपयोग के लक्षण में प्रशस्त राग तथा चित्त प्रसाद को शुभ बताया गया है। जहाँ राग-द्वेष, मोह व अप्रशस्त राग होता है वहाँ अशुभ उपयोग है।

शुभोपयोग का लक्षण-

पुण्णास्सासवभूदा अणुकंपा सुद्ध एव उवओगो।[२१]

जीवों पर दया, वचन, काय की क्रिया, शुद्धदर्शन ज्ञान रूप उपयोग ये पुण्यकर्म के आस्रव के कारण है।

शुभः धर्म्यम्।।[२२]

धर्मध्यान शुभभाव है।

देव-शास्त्र-गुरू की पूजा में तथा दान में एवं सुशीलों में और उपवासादिक में लीन आत्मा शुभोपयोगात्मक है। जो जिनेन्द्रों को जानता है, सिद्धों तथा अनगारों की श्रद्धा करता है, अर्थात् पंचपरमेष्ठी में अनुरक्त है और जीवों के प्रति अनुकम्पा युक्त है उसके वह शुभोपयोग है।

शुद्धोपयोग का लक्षण-

सुद्धं सुद्धसहावो अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।[२३]

शुद्धभाव है सो अपना शुद्ध स्वभाव आप में ही है ऐसा जानना चाहिये।

सुविदितपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति।।[२४]

जिन्होंने पदार्थों और सूत्रों को भलीभांति जान लिया है जो संयम और तपयुक्त है जो वीतराग है जिन्हें सुख-दुःख समान हैं, ऐसे श्रमण को शुद्धोपयोगी कहा गया है।

तीनों उपयोगों में गुणस्थान- मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से घटता हुआ अशुभ उपयोग है। इसके बाद अविरत सम्यग्दृष्टि,

---

२२. पंचास्तिकाय/मूल/१३१

२३. मूलाचार/२३५, रयणसार/६५

२४. भा.पा./७६

देशविरत तथा प्रमत्तविरत इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से बढ़ता हुआ शुभोपयोग है। उसके बाद अप्रमत्त से लेकर क्षीणकषाय तक छह गुणस्थानों में तारतम्य से बढ़ता हुआ शुद्धोपयोग है। सयोगजिन और अयोगजिन इन दो गुणस्थानों में शुद्धोपयोग का फल है।

प्रवृत्त्यात्मक शुभोपयोग सप्तम गुणस्थान में भी रहता है। जय धवला, महाधवलादि में इसके ऊपर भी शुभोपयोग माना है। जिस समय हम सामायिक में मौन हो जाते हैं या गुप्ति आदि में लीन हो जाते हैं, वस्तुतः उस सयम शुद्धोपयोग होता है यह क्रम रखा है।

धम्मेण परिणदप्पा जदि सुद्धसंपयोग जुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं।।[२६]

धर्म से परिणित आत्मा यदि शुद्धोपयोग सहित होता है तो वह मोक्षसुख को प्राप्त करता है, और यदि शुभोपयोग वाला होता है तो स्वर्गसुख को प्राप्त होता है।

इस प्रकार से उपयोग आत्मा का ही लक्षण है। लक्ष्य और लक्षण की दृष्टि से भेद होते हुये भी दोनों एक ही है, क्योंकि आत्मा उपयोग के बिना नहीं है, और उपयोग आत्मा के बिना नहीं है। संसार की प्रत्येक आत्मा में उपयोग पाया जाता है और जिसमें उपयोग पाया जाता है वह आत्मा है। मात्र अन्तर है जीव वर्तमान में जो संसार में भटक रहा है वह शुद्ध परिणति से परिणित नहीं है अपितु अशुद्ध परिणति में ही मग्न है। जब तक जीव शुद्ध परिणति में नहीं आयेगा तब तक जीव के शुद्धोपयोग की दशा का निर्माण नहीं होगा। जिसको आत्मा और परमात्मा का भेद स्पष्ट रीति से समझ में आ जाता है वही वास्तव में शुद्धोपयोग से परिणित आत्मा होती है और एक दिवस वह शुद्ध परिणित आत्मा के स्व-स्वरूप को प्राप्त कर चैतन्य-आनन्द में लीन सिद्ध अवस्था को प्राप्त करती है।

आयतस्तूः
आशीष कुमार जैन आचार्य,शाहगढ़

---

२५ भावपाहुड/मूल/७७
२६. प्रवचनसार/मूल/१४

अणुक्कमणिआ

क्र.	विसयो	पिट्ठसंखा
1	उवओगसद्दस्स विउपत्ति	1
2	लक्खणस्स लक्खणं	2
3	उवओगस्स लक्खणं	3
4	उवओगभावणाए लक्खणं	6
5	उवओगो लद्धि य णिद्देसो	7
6	उवओग-लद्धिसु अंतरो	8
7	उवओगस्स वायणा-पृच्छणादीणं भेया	9
8	सहाव-विहावरुवाइं भेयाइं लक्खणाइं य	10
9	उवओगस्स भेयो	11
10	णाणोवओगो	13
11	पमाणं	16
12	परोक्खपमाणं	18
13	पच्चक्खपमाणं	53
14	उवओगे योगे य अंतरो	89
15	गुणट्ठाणेसु जोगो	93
16	असुहोवओगस्स लक्खणं	100
17	सुहोवओगस्स लक्खणं	101
18	सुद्धोवओगस्स लक्खणं	102

उवओग-विमस्सो

(उपयोग विमर्श)

१. उवओगसद्दस्स विउपत्ति - उपयुज्यते वस्तु प्रति प्रेर्यते यः वस्तु स्वरूपपरिज्ञानार्थम् इत्युपयोगः। ''अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्'' , घञ्। अथवा आत्मन उप समीपे योजनं उपयोगः ''भावे'' , घञ्।

वत्थुं पइ **उपयुज्** हवइ, वत्थुसरुवस्स वा परिण्णाणाय पेरइ, सो उवओगो अत्थि। एतम्मि '**अकर्तरि च कारके**' एतत्तो **घञ्** पत्तयो हवीअ। अहवा अप्पणो **उप**-समीवं **युज्** संलग्गं उवओगो अत्थि। अत्थ भाववायीसद्देसु घञ् पत्तयो हवीअ। उवओगसद्दस्स आगमिगात्थो अत्थि - जीवस्स अणुविहायीपरिणामो, अज्झप्पिगात्थो य अत्थि- परिणदि अणुट्ठाणं वा। उवओगसद्दो पि दोसद्देहिं मिलिदूणं णिम्मिदं अत्थि- उप+योग= अयं कम्मधारयसमासपहाणसद्दो अत्थि। सत्थेसु उवओगो अयं एगो पदात्तगो सद्दो अत्थि (उव+योगो) जस्स अत्थो अत्थि- योगस्स समीवं णिकटं वा।

उपयोग शब्द की व्युत्पत्ति - उपयुज्यते वस्तु प्रति प्रेर्यते यः वस्तु स्वरूपपरिज्ञानार्थम् इत्युपयोगः। ''अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्'' पाणिनि सूत्र ३/३/१८, घञ्। अथवा आत्मन उप समीपे योजनं उपयोगः ''भावे'' पा.सू. ३/३/१८, घञ्। त.सा./२/८

वस्तु के प्रति **उपयुज्** होता है वा वस्तु स्वरूप का परिज्ञान करने के लिये प्रेरित होता है उसे उपयोग कहते हैं। इसमें '**अकर्तरि च कारके**' से **घञ्** प्रत्यय हुआ। अथवा आत्मा के '**उप**' - समीप '**युज्**' लगना उपयोग है। यहाँ भाववाची शब्द में घञ् प्रत्यय किया गया है। उपयोग शब्द का आगमिक अर्थ है जीव का अनुविधायी परिणाम और आध्यात्मिक अर्थ है परिणति या अनुष्ठान। उपयोग शब्द भी दो से मिलकर बना है उप+योग = यह कर्मधारय समास प्रधान शब्द है। शास्त्रों में उपयोग यह एक पदात्मक है (उप+योग) जिसका अर्थ है योग के समीप या निकट।

उवओगसामण्णेण णाणदंसणरुवं अत्थि सो एव अप्पणो लक्खणं अत्थि। कम्माणं खयस्स खयोवसमस्स णिमित्तेण उप्पण्णमाणो, बहिरंगांतरंगाणं वा णिमित्तेहिं उप्पण्णमाणो चेतण्णस्स अण्वयी, तत्तपरियं अत्थि- चेतण्णं छड्डिऊणं अण्णत्त ण हवइ, ते जीवा परिणामा उवओगो अत्थि। उवओगजीवेसु लक्खलक्खणाणं अपेक्खाए भेयो अत्थि। उवओगो लक्खणं अत्थि, जीवो य लक्खं अत्थि। अतो जीवस्स लक्खणे सदि उवओगो अप्पसरुवं अत्थि।

लक्खणस्स लक्खणं- व्यतिकीर्ण वस्तु व्यावृत्तिर्हेतुर्लक्षणम्।।

वितिकीण्णा अणेगा वत्थुसु कस्स एग-वत्थुं वाविच्तिहेदुं लक्खणं इदि कहइ। यहा- अग्गीए उम्हा (अप्पभूदो), दण्डीपुरिसस्स दण्डो (अणप्पभूदो)। तेण पकारेण जीवोवओगेसु लक्खलक्खणाणं अपेक्खाए भेयो संति। उवओगो हविस्सदि ता जीवे एव, अण्णत्तं ण। जेण पकारेण उम्हा अग्गीए हविस्सदि अण्णत्तं ण। परंतु कस्सावि जणो कहइ जं अग्गि कहं अत्थि? तस्स लक्खणं किं अत्थि? कहइ- उम्हा अग्गिविसये कहइ, अग्गि तस्स लक्खं अत्थि।

उपयोग सामान्य से ज्ञानदर्शनरूप है वही आत्मा का लक्षण है। कर्मों के क्षय और क्षयोपशम के निमित्त से उत्पद्यमान वा बहिरंग और अंतरंग दोनों प्रकार के निमित्तों से उत्पद्यमान चैतन्य के अन्वयी अर्थात् चैतन्य को छोड़कर अन्यत्र नहीं रहने वाले जीव के परिणामों को **उपयोग** कहते हैं। उपयोग और जीव में लक्ष्य-लक्षण की अपेक्षा भेद है। उपयोग लक्षण है और जीव लक्ष्य है। अत: जीव का लक्षण होने से उपयोग आत्मस्वरूप है।

लक्षण का लक्षण- व्यतिकीर्ण वस्तु व्यावृत्तिर्हेतुर्लक्षणम्।।

मिली हुई अनेक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु को पृथक् करने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं। जैसे अग्नि में उष्णता (आत्मभूत), दण्उडीपुरुष का दण्ड (अनात्मभूत)। उसी प्रकार जीव और उपयोग में लक्ष्य और लक्षण की अपेक्षा भेद है। उपयोग होगा तो जीव में ही, अन्यत्र नहीं। जिस प्रकार उष्णता अग्नि में होगी अन्यत्र नहीं। परन्तु किसी के पूछने पर अग्नि कैसी है? अर्थात् उसका लक्षण क्या है? तो कहते हैं- अग्नि उष्ण है, उसका लक्षण उष्ण है। उष्ण क्या है? उष्णता किसको बता रही है? तो कहते हैं- उष्णता अग्नि को बता रही है, अग्नि उसका लक्ष्य है।

तेण पकारेण जीवो कहं अत्थि? जीवस्स लक्खणं किं अत्थि? जीवो उवओगमओ अत्थि। जीवस्स लक्खणं उवओगो अत्थि। उवओगो किमत्थि? उवओगो कस्स लक्खणं कहइ? उवओगो जीवं कहइ, जं जो उवओगमओ अत्थि, सो एव जीवो अत्थि, सेसो ण। उत्तकहणेण सपट्टं हवइ जं जीवोवओगेसु लक्खलक्खणाणं भेयो अत्थि, परंतु अप्पभूदस्स अपेक्खाए।

२. उवओगस्स लक्खणं –

चैतन्यानुविधायी परिणामः उपयोगः।

चेतण्णाणुविहायी परिणामो णाम उवओगो।

वत्थुणिमित्तो भावो जादो जीवस्स होदि उवओगो॥

जीवस्स जो भावं वत्थूए उग्गहाय पवित्तिं हवइ, सो एव उवओगो अत्थि।

प्रणिधानम् उपयोगः परिणामः इत्यनर्थान्तरम्॥

पणिहाणं उवओगो परिणामो इदि णामांतरं संति।

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥

उसी प्रकार से जीव कैसा है? जीव का लक्षण क्या है? जीव उपयोगमय है। जीव का लक्षण उपयोग है। उपयोग क्या है? उपयोग किसका बता रहा है? उपयोग जीव को बता रहा है, कि जो उपयोगमयी है वही जीव है, शेष नहीं। उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि जीव और उपयोग में लक्ष्य-लक्षण का भेद है तो परन्तु आत्मभूत की अपेक्षा।

उपयोग का लक्षण-

चैतन्यानुविधायी परिणामः उपयोगः।

चैतन्य का अनुविधायी परिणाम ही उपयोग है।

वत्थुणिमित्तो भावो जादो जीवस्स होदि उवओगो॥

जीव का जो भाव वस्तु के ग्रहण करने के लिये प्रवृत्त होता है वही उपयोग है।

प्रणिधानम् उपयोगः परिणामः इत्यनर्थान्तरम्॥

प्रणिधान, उपयोग, परिणाम ये सब एकार्थवाची है।

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥

जीवो उवओगमओ, अमुत्तिगो, कत्ता, सदेहपरिणामो, भोत्ता, संसारी, सिद्धो विस्सोड्ढगई अत्थि।

यत्संनिधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिं प्रति व्याप्रियते स ज्ञानवरणक्षयोपशमविशेषो लब्धिरिति विज्ञायते। तदुक्तं निमित्तं प्रतीत्य उत्पद्यमान आत्मनः परिणाम उपयोग इत्युपदिश्यते।

जस्स सण्णिहाणेण अप्पा द्रव्वेंदियाणं रयणां पइ वापारं करइ, इत्थं णाणावरणकम्मस्स खयोवसमविसेसं लद्धिं कहइ। पूव्वोत्तणिमित्तलद्धीए अवलंबणेण उप्पण्णो अप्पणो परिणामं उवओगो कहइ।

आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणामः उपयोगः चैतन्यमनुविधात्यन्वयरूपेण परिणमति अथवा पदार्थ परच्छित्ति काले घटोऽयं पटोऽयंमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयति चैतन्यानुविधायि स्फुटं द्विविधः।

अप्पणो चेतण्णाणुविहायी परिणामं उवओगो कहइ। जो चेतण्णस्स आण्णाए अणुसारेण चलदि, तस्स वा अण्वयरुवेण परिणमणं करइ, सो उवओगो कहइ।

जीव उपयोगमयी, अमूर्त्तिक, कर्त्ता, स्वदेहपरिणाम, भोक्ता, संसारी, सिद्ध और ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

यत्संनिधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिं प्रति व्याप्रियते स ज्ञानवरणक्षयोपशमविशेषो लब्धिरिति विज्ञायते। तदुक्तं निमित्तं प्रतीत्य उत्पद्यमान आत्मनः परिणाम उपयोग इत्युपदिश्यते।[३]

जिसके सन्निधान से आत्मा देव्येन्द्रियों की रचना के प्रति व्यापार करता है ऐसे ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम विशेष को लब्धि कहते है। उस पूर्वोक्त निमित्त लब्धि के अवलम्बन से उत्पन्न होने वाले आत्मा के परिणाम को उपयोग कहते है।

आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणामः उपयोगः चैतन्यमनुविधात्यन्वयरूपेण परिणमति अथवा पदार्थ परच्छित्ति काले घटोऽयं पटोऽयंमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयति चैतन्यानुविधायि स्फुटं द्विविधः।[४]

आत्मा के चैतन्यानुविधायी परिणाम को उपयोग कहते है। जो चैतन्य की आज्ञा के अनुसार चलता है या उसके अन्वयरूप से परिणमन करताहै उसे उपयोग कहते है।

अहवा पयत्थपरिच्छित्तीए समयो 'अयं घटो अत्थि' 'अयं पटो अत्थि' एतेण पकारेण अत्थगहणरुवेण वापारं करइ, सो चेतण्णाणुविहायी अत्थि। सो दोपकारस्स अत्थि।

स्वपरग्रहणपरिणामः उपयोगः।

सवपराइं उग्गहपरिणामं उवओगो इदि कहइ।

मार्गणोपायो ज्ञानदर्शनसामान्यमुपयोगः।

णाणदंसणसामण्णं उवओगो अत्थि।

उपयोगो लक्षणम्।

जीवस्स लक्खणं उवओगो अत्थि।

चेदणाए परिणदिविसेसस्स णाम उवओगो अत्थि। चेदणा सामाण्णं गुणं अत्थि, णाणदंसणाइं दोपज्जायाओ अवत्थाओ वा संति। सो एव उवओगो। दंसणं दु अंतरचिदपकासस्स सामाण्णं पदिभासं अत्थि, जो णिव्विकप्पस्स कारणेण वयणातीदो णवरि य अणुभवगम्मो अत्थि। णाणं य बहिपयत्थाणं विसेस-पइभासं कहइ।

अथवा पदार्थ परिच्छित्ति के समय 'यह घट है' 'यह पट है' इस प्रकार अर्थ ग्रहण रूप से व्यापार करता है वह चैतन्य का अनुविधायी है। वह दो प्रकार का है।

स्वपरग्रहणपरिणामः उपयोगः।[५]

स्व और पर को ग्रहण करने वाले परिणाम को उपयोग कहते है।

मार्गणोपायो ज्ञानदर्शनसामान्यमुपयोगः।[७]

मार्गणा जो अवलोकरन ताका जो उपाय सो ज्ञानदर्शन का सामान्य भावरूप उपयोग है।

उपयोगो लक्षणम्। त.सू.

जीव का लक्षण उपयोग है।

चेतना की परिणति विशेष का नाम उपयोग है। चेतना सामान्य गुण है और ज्ञादर्शन ये दो इसकी पर्याय या अवस्थायें हैं। इन्हीं को उपयोग कहते है। तिनमें दर्शन तो अन्तर्चित्प्रकाश का सामान्य प्रतिभास है जो निर्विकल्प होने के कारण वचनातीत व केवल अनुभवगम्य है। और ज्ञान बाह्य पदार्थों के विोष प्रतिहभास को कहते है।

सविकप्पस्स कारणेण वाखेयं अत्थि। एआअ दोण्णि एव उवओगाणं अणेगभेय-पभेया संति। सो एव उवओगो बहिरुवेण सुहासुहपयत्थाणं आरंभइ, ता सुहासुहविकप्परुवेण हवइ, यदो य णवरि अंतराप्पणो आस्सयं करेइ, ता णिव्विकप्पस्स कारणेण सुद्धो कहइ। सुहासुहावओगा संसारस्स कारणमत्थि। अतो परमत्थेण हेयो अत्थि, सुद्धोवओगो य मोक्खस्स आणंदस्स कारणं अत्थि, तं उवादेयो अत्थि।

उवओगभावणाए लक्खणं -

मतिज्ञानावरणीयक्षयोपमजनितार्थग्रहणशक्तिरूपलब्धिर्ज्ञाते अर्थे पुनः पुनश्चिन्तनं भावना नीलमिदं, पीतमिदं इत्यादिरूपेणार्थग्रहणव्यापार उपयोगः।

मइणाणावरणस्स खयोवसमजणिदं अत्थग्गहणं सत्तिरुवं जो लद्धि अत्थि, तेण जाणित्ता पयत्थेसु पुणो पुणो चिंतणं भावणा अत्थि। यहा- इदं णीलं अत्थि, इदं पीदं अत्थि, आदिरुवं अत्थग्गहणस्स वापारं उवओगो अत्थि।

सविकल्प होने के कारण व्याख्येय है। इन दोनों ही उपयोगों के अनेक भेद-प्रभेद हैं। यही उपयोग जब बाहरहवें शुभ या अशुभ पदार्थों का आरमय करता है तो शुभ अशुभ विकल्पों रूयप हो जाता है और जब केवल अन्तरात्मा का आश्रय करता है तो निर्विकल्प होने के कारण शुद्ध कहलाता है। शुभ-अशुभ उपयोग संसार का कारण है अतः परमर्थ से हेय है और शुद्धोपयोग मोक्ष व आनन्द का कारण है इसलिये उपादेय है। जै.सि.को.

उपयोग भावना का लक्षण -

मतिज्ञानावरणीयक्षयोपमजनितार्थग्रहणशक्तिरूपलब्धिर्ज्ञाते अर्थे पुनः पुनश्चिन्तनं भावना नीलमिदं, पीतमिदं इत्यादिरूपेणार्थग्रहणव्यापार उपयोगः। पं.का./ता.वृ.४३/८६/२

मतिज्ञानावरण के क्षयोपशमजनित अर्थग्रहण को ग्रहण को शक्तिरूप जो लब्धि उसके द्वारा जाने गये पदार्थ में पुनः-पुनः चिन्तन करना भावना है। जैसे कि **यह नील है यह पीत है** इत्यादि रूप अर्थग्रहण करने का व्यापार उपयोग है।

उवओगो लद्धि य णिद्देसो - उवओगो णाणदंसणमग्गणाए अंतरो - स्वपरग्रहणपरिणाम उपयोगः। न स ज्ञानदर्शनमार्गणयोरन्तर्भवति, ज्ञानदृगावरणकर्मक्षयोपशमस्य तदुभयकारणस्योपयोगत्वविरोधात्।

सवपरग्गाहगपरिणामविसेसो णाम उवओगो अत्थि। सो उवओगो णाणमग्गणाए दंसणमग्गणाए य अंतरभूदो ण हवइ, यदोहि, णाणदंसणेहिं कारणरुवं णाणावरणदंसणावरणाण खयोवसमं उवओगं मण्णे विरोहो उप्पज्जइ।

साकारोपयोगो ज्ञानमार्गणायामनाकारोपयोगो दर्शनमार्गणायां अन्तर्भवति तयोर्ज्ञानदर्शनरूपत्वात्।

सायारोवओगो णाणमग्गणाए अणायारोवओगो य दंसणमग्गणाए अंतरभूदो हवंति, यदोहि, ते दोण्णि णाणदंसणरुवं एव अत्थि। टिप्पणी- मग्गणाए अत्थो खयोवसम-सामाण्णं लद्धि वात्थि, उवओगो य तस्स कज्जं अत्थि। अतो दोण्णि भेयो संति। परंतु जदो दोण्णि सरुवं णिरक्खामो, ता दोण्णि कोवि भेयो णत्थि, यदोहि उवओगो पि णाणदंसणसरुवं अत्थि, मग्गणा य पि।

उपयोग व लब्धि निर्देश

उपयोग व ज्ञानदर्शन मार्गणा में अन्तर

स्वपरग्रहणपरिणाम उपयोगः। न स ज्ञानदर्शनमार्गणयोरन्तर्भवति, ज्ञानदृगावरणकर्मक्षयोपशमस्य तदुभयकारणस्योपयोगत्वविरोधात्।

स्व व पर को ग्रहण करने वाले परिणाम विशेष को उपयोग कहते हैं। वह उपयोग ज्ञानमार्गणा और दर्शनमार्गणा में अन्तर्भूत नहीं होता है, क्योंकि, ज्ञान और दर्शन इन दोनों के कारणरूप ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशम को उपयोग मानने में विरोध जाता है। **ध. २/१**

साकारोपयोगो ज्ञानमार्गणायामनाकारोपयोगो दर्शनमार्गणायां अन्तर्भवति तयोर्ज्ञानदर्शनरूपत्वात्। साकारोपयोग ज्ञानमार्गणा में और अनाकार उपयोग दर्शनमार्गणा में अन्तर्भूत होते हैं क्योंकि, वे दोनों ज्ञान और दर्शन रूप ही है। टिप्पणी- मार्गणा का अर्थ क्षयोपशम सामान्य या लब्धि है और उपयोग उसका कार्य है। अतः इन दोनों में भेद है। परन्तु जब इन दोनों के स्वरूप को देखा जाये तो दोनों में कोई भेद नहीं है, क्योंकि उपयोग भी ज्ञानदर्शन स्वरूप है और मार्गणा भी।

उवओगलद्धिसु अंतरो- णाणावरणकम्मस्स खयोवसमं लद्धि इदि कहइ। तस्स य णिमित्तेण उप्पण्णपरिणामं उवओगो इदि कहइ।

एक्के काले एक्कं णाणं जीवस्स होदि उवजुत्तं।
णाणा णाणाणि पुणो लद्धिसहावेण बुच्चंति।।

जीवस्स एगसमयम्मि एगमेव णाणस्स उवओगो हवइ। किंतु लद्धिरुवेण एगसमये अणेकाणि णाणाणि उत्तं।

नास्त्यत्र विषमव्याप्तिर्यावल्लब्ध्युपयोगयोः।
लब्धिक्षतेरवश्यं स्यादुपयोगक्षतिर्यतः।।८५४।।
अभावात्तूपयोगस्य क्षतिर्लब्धेश्च वा न वा।
यत्तदावरणस्यामा दृशा व्याप्तिर्न चामुना।।८५५।।

अत्थ सव्वोवओगलद्धिसु विसमवात्ति एव हवंति। यदोहि लद्धिणासेण अवसयमेव उवओगस्स णासं हवइ, किंतु उवओगस्स अभावेण लद्धीए णासं हवइ अहवा ण पि हवइ।

उपयोग व लब्धि में अन्तर- ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को लब्धि कहते हैं और उसके निमित्त से उत्पन्न होने वाले परिणाम को उपयोग कहते हैं।

कार्तिकेयानुपेक्षा २६०

एक्के काले एक्कं णाणं जीवस्स होदि उवजुत्तं।
णाणा णाणाणि पुणो लद्धिसहावेण बुच्चंति।

जीव के एक समय में एक ही ज्ञान का उपयोग होता है। किन्तु लब्धिरूप से एक सयम अनेक ज्ञान कहे हैं **।पंचाध्यायी ८५४-८५५**

नास्त्यत्र विषमव्याप्तिर्यावल्लब्ध्युपयोगयोः।
लब्धिक्षतेरवश्यं स्यादुपयोगक्षतिर्यतः।।८५४।।
अभावात्तूपयोगस्य क्षतिर्लब्धेश्च वा न वा।
यत्तदावरणस्यामा दृशा व्याप्तिर्न चामुना।।८५५।।

यहाँ सम्पूर्ण लब्धि और उपयोगों में विषमव्याप्ति ही होती है। क्योंकि लब्धि के नाश से अवश्य ही उपयोग का नाश हो जाता है किन्तु उपयोग के अभाव से लब्धि का नाश हो अथवा न भी हो।

लद्धि दु णिव्विकप्पं हवइ-

सिद्धमेतावतोक्तेन लब्धिर्या प्रोक्तलक्षणा।
निरुपयोगरूपत्वान्निर्विकल्पा स्वतोस्ति सा॥८५८॥

इत्तियं कहणेण अयं सिज्झदि जं जस्स लक्खणं पुव्वमेव कहीअ, इत्थं जो लद्धि अत्थि, सो सयत्तो उवओगरुवं ण सदि णिव्विकप्पं अत्थि।

उवओगस्स अत्थित्ते पि लद्धीए अभावो ण हवइ -

कदाचित्कास्ति ज्ञानस्य चेतना स्वोपयोगी।
नालं लब्धेर्विनाशाय समव्याप्तेरसंभवात्।

लद्धि-उवओगेसु समवात्तीए ण सदि यदो कदाचि अप्पोवओगम्मि, उवलक्खणेण अण्णोवओगेसु पि तत्तपरा उवओगाप्पग-णाणचेदणा लद्धिरुवं णाणचेदणाए णासाय समत्थो णत्थि।

उवओगस्स वायणा-पृच्छणादीणं भेया -

उत्थानिका- संपधि एदेसु जो उवजोगो तस्स भेदपरूवणट्ठसुत्तरसुत्तमागदं।

लब्धि तो निर्विकल्प होती है-

सिद्धमेतावतोक्तेन लब्धिर्या प्रोक्तलक्षणा।
निरुपयोगरूपत्वान्निर्विकल्पा स्वतोस्ति सा॥८५८॥पंचाध्यायी ८५८

इतना कहने से यह सिद्ध होता है कि जिसका लक्षण कहा जा चुका है ऐसी जो लब्धि है वह स्वत: उपयोग रूप न होने निर्विकल्प है।

उपयोग के अस्तित्व में भी लब्धि का अभाव नहीं हो जाता

कदाचित्कास्ति ज्ञानस्य चेतना स्वोपयोगी।
नालं लब्धेर्विनाशाय समव्याप्तेरसंभवात्॥पंचाध्यायी ८५३

लब्धि और उपयोग में समव्याप्ति नहीं होने से यदा कदाचित् आत्मोपयोग में अर्थात् उपलक्षण से अन्य उपयोगों में भी तत्पर रहने वाली उपयोगात्मक ज्ञानचेतना लब्धि रूप ज्ञान चेतना के नाश करने के लिये समर्थ नहीं है।

उपयोग के वांचना पृच्छना आदि भेद

इन आगम निक्षेपों में जो उपयोग है उसके भेदों की प्ररूपणा के लिये उत्तर सूत्र प्राप्त होता है ।

जा तत्थ वायणा वा पृच्छणा का पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेक्खा वा थम-थुदि-धम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया।

एतेसु आगमणिक्खेपेसु जो उवओगो अत्थि, तस्स भेयाणं परुवणाए उत्तरसुत्तं पावइ- तेसु नवागमेसु जा वायणा, पृच्छणा, पडिच्छणा, परियट्टणा, अणुपेक्खणा, थवं, थुदि, धम्मकहा य जे ते उवओगो।

उवओगस्स सहाव-विहावरुवाइं भेयाइं लक्खणाइं य -

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विभावणाणं त्ति॥१०॥
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं त्ति।
सण्णादिरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं।११॥
सण्णाणं चउभेयं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं तिवियप्पं मदियहि भेददो चेव॥१२॥
तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं॥१३॥
चक्खु-अचक्खु ओही तिण्णि वि भणिदं विभावदिच्छित्ति॥१४॥

स्वभावज्ञानम्.....कार्यकारणरूपेण द्विविधं भवति। कार्यं तावत् सकलविमलकेवलज्ञानम्। तस्स कारणं परमपारिणामिकभावस्थितत्रिकालनिरुपाधिरुपं सहजज्ञानं स्यात्। १०। स्वभावोपि द्विविधः कारणस्वभावः कार्यस्वभावश्चेति। तत्र कारणं दृष्टिः सदा पावनरूपस्य औदयिकादिचतुर्णां विभावस्वभावपरभावानामगोचरस्य सहजपरमपारिणामिकभावस्वभावस्य कारणसमयसारस्वरूपस्य.....खलु स्वरूपश्रद्धानमात्रमेव। अन्या कार्यदृष्टिः दर्शनज्ञानावरणीयप्रमुखघातिकर्मक्षयेण जातैव।१३।

उन नौ आगमों में जो वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति, धर्मकथा, तथा और भी इनको आदि लेकर जो अन्य है वे उपयोग है।

जीवो उवओगमओ अत्थि। उवओगो णाणदंसणाइं अत्थि। णाणोवओगो दोपकारा - सहावणाणं विहावणाणं य। जो णवरि इंदियरहिदं असहायं य अत्थि, सो सहावणाणं अत्थि। तत्थ सहावणाणं एव कज्ज-कारणरुवेहिं दोपकाराणं संति। कज्जसहावणाणं सकलं विमलं य केवलणाणं अत्थि। तस्स य जो कारणं परमपारणामिगभावेण ठिदं त्तिकाल-णिरुवाहिग-सहजणाणं अत्थि, सो कारणसहावणाणं अत्थि। सम्मत्तणाणं मिच्छाणाणं य विहावो दोपकारा संति। सम्मत्तणाणं चदुभेदा- मइ, सुद, अवहि, मणपज्जयं अण्णाणमइ-आदीणं भेयेहिं त्तिभेदा। तेण पकारेण दंसणोवओगो सहावविहावाणं भेयेण दोपकारा संति- जो णवरिं इंदियरहिदं असहायं य। सो सहावदंसणोवओगो कहइ, सो एव पि दोपकारा-कारणसहावो कज्जसहावो य। तत्थ कारणसहाव-दिट्ठिदंसणं दु सदा पावणरुवं ओदयिगादि-चदुविहावसहाव-परभावाणं अगोयरं, इत्थं सहज-परमपारणामिगरुवं जस्स सहावो अत्थि, जो कारणसमयसारसरुवं अत्थि, इत्थं अप्पणो समीचीणसरुवं सद्धा मत्तमेव अत्थि।

उपयोग के स्वभाव विभाव रूप भेद व लक्षण- जीव उपयोगमयी है। उपयोग ज्ञान और दर्शन है। ज्ञानोपयोग दो प्रकार है। स्वभाव ज्ञान और विभाव ज्ञान। जो केवल इंदियरहित और असहाय है वह स्वभाव ज्ञान है। तहाँ स्वभावज्ञान ही कार्य और कारण रूप से दो प्रकार का है। कार्य स्वभावज्ञान तो सकल विमल केवलज्ञान है। और उसका जो कारण परमपारणामिक भाव से स्थित त्रिकाल निरूपाधिक सहज ज्ञान है, वह कारण स्वभाव ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान रूप भेद किये जाने पर विभाव ज्ञान दो प्रकार है। सम्यग्ज्ञान चार भेद वाला है - मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और अज्ञानमति आदि के भेद से तीन भेद वाला है। उसी प्रकार दर्शनोपयोग स्वभाव और विभाव के भेद से दो प्रकार है जो केवल इंदिय रहित और असहाय है। वह स्वभाव दर्शनोपयोग कहा है वह भी दो प्रकार है कारण स्वभाव और कार्य स्वभाव है।

तहाँ कारण स्वभाव दृष्टि दर्शन तो सदा पावनरूप और औदयिकादि चार विभाव और स्वभाव परभावों के अगोचर ऐसा सहज सहज परम पारणामिक रूप जिसका स्वभाव है , जो कारण समयसार स्वरूप है, ऐसे आत्मा के यथार्थ स्वरूप श्रद्धान मात्र ही है।

बीओ कज्जदिट्ठि–दंसणावरण–णाणावरणादि–घादिकम्माणं खयेण उप्पज्जइ। चक्खु, अचक्खु ओही य एआइं त्तिविहावदंसणाइं कहिदाइं।

३. उवओगस्स भेयो – (णाण–दंसणावओगा) –

उवओगो दुवियप्पो दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं।।

सो उवओगो दोपकारस्स अत्थि– णाणोवओगो दंसणोवओगो य। णाणोवओगो अट्ठपकाराणं दंसणोवओगो य चदुपकाराणं संति।

स उपयोगो द्विविधः –ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति। ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः – मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानं मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं विभङ्गज्ञानं चेति। दर्शनोपयोगश्चतुर्विधः – चक्षुदर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनं चेति। तयोः कथं भेदः। साकारानाकारभेदात्। साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति। तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते। निरावरणेषु युगपत् पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनाज्ज्ञानस्य प्रागुपन्यासः, **अभ्यर्द्वित्वात्।**

दूसरी कार्यदृष्टि दर्शनावरणीय, ज्ञानवरणीयादि घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न होती है चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीन विभाव दर्शन कहे गये है।

उपयोग के भेद– (ज्ञान–दर्शनोपयोग)

उवओगो दुवियप्पो दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं।। द्रव्यसंग्रह १/२

वह उपयोग दो प्रकार का है ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनोपयोग चार प्रकार है।

स उपयोगो द्विविधः –ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति। ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः – मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानं मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं विभङ्गज्ञानं चेति। दर्शनोपयोगश्चतुर्विधः – चक्षुदर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनं चेति। तयोः कथं भेदः। साकारानाकारभेदात्। साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति। तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते। निरावरणेषु युगपत् पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनाज्ज्ञानस्य प्रागुपन्यासः, अभ्यर्द्वित्वात्।[५]

सो उवओगो दोपकारस्स अत्थि- णाणोवओगो दंसणोवओगो य। णाणोवओगो अट्ठपकारस्स - मदिणाणं, सुदणाणं, ओहीणाणं, मणपज्जयणाणं, केवलणाणं, कुमदिणाणं, कुसुदणाणं, कुओहीणाणं य। दंसणोवओगो चदुपकारस्स- चक्खुदंसणं, अचक्खुदंसणं, ओहीदंसणं, केवलदंसणं य। दंसणोवओगो अणायारो णाणोवओगो य सायारो अत्थि। विसेसणाणं सायारो उवओगो। सत्ता अवलोकणं मत्तं णिरायारो उवओगो। वत्थूए विसेसं ण जाणिदूणं सामण्णं सत्ताए अवलोकणं दंसणं अत्थि, विसेसं जाणणं णाणं अत्थि। छदुमत्थाणं पढमं दंसणं हवइ, तदणंतरं णाणं हवइ, परंतु णिरावरण-अरिहंत-सिद्ध-संयोगकेवलीणं णाणोवओगो दंसणोवओगो जुगवं हवंति।

४. णाणोवओगो-

णाणसद्दो संसकयवाकरणे ज्ञा-धातुए णिप्पण्णं ल्युट् पत्तये सदि (णपुंसकत्ते सदि) णाणसद्दस्स उप्पज्जइ। एतस्स अत्थो अत्थि- जाणणं। सम्मत्तणाणस्स एव णाणसण्णा अत्थि।

जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञप्तिमात्रं वा ज्ञानम्॥

वह उपयोग दो प्रकार है - ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कु-अवधिज्ञान। दर्शनोपयोग चार प्रकार का है- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल। दर्शनोपयोग अनाकार है और ज्ञानोपयोग साकार है। विशेष ज्ञान को साकार उपयोग कहते है, और सत्ता अवलोकन मात्र को निराकार उपयोग कहते है। अर्थात् वस्तु के विशेष को न जानकर सामान्य सत्ता का अवलोकन दर्शन है और विशेष को जानना ज्ञान है। छद्मस्थों के प्रथम दर्शन और तदनन्तर ज्ञान होता है पश्रनतु निरवरण अर्हत्, सिद्ध, और संयोगकेवलियों के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग एक साथ होते हैं।

ज्ञानोपयोग

ज्ञान शब्द ज्ञा धातु से निष्पन्न ल्युट् प्रत्यय(नपुंसकत्व में होने से) ज्ञान शब्द की उत्पत्ति होती है। इसका अर्थ है जानना। सम्यक्ज्ञान की ही ज्ञान संज्ञा है।

जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञप्तिमात्रं वा ज्ञानम्॥

जो जाणइ, सो णाणं (कत्तासाहणं), जेण जाणइ सो णाणं अत्थि (करणसाहणं), जाणणं मत्तं णाणं अत्थि (भावसाहणं)

एवंभूतनय-वक्तव्यवशात् ज्ञानदर्शनपर्यायपरिणतात्मैव ज्ञानं दर्शनं च तत्स्वभाव्यात्।

एवंभूदणयस्स दिट्ठीए णाणकिरियाए परिणदाप्पा एव णाणं अत्थि, यदोहि सो णाणसहावी अत्थि।

एवंभूदणयो - पज्जायसद्दं तेण सद्देण झुणिदा किरियाकालम्मि एव वायणा एवंभूदणयो अत्थि। यहा- समहिरूढणयस्स अपेक्खाए पुरंदरो सचीपइ य सद्देसु भेये सदि पि णयराणं णासं ण करणस्स समये पि पुरंदरसद्दो इंदस्स अत्थे पयुत्तं हवइ, परंतु एवंभूदणयस्स अपेक्खाए णयराणं नासे सदि एव इंदं पुरंदरो णामेण जाणइ।)

अप्पा णाणसहावी अत्थि। णाणं उवओगस्स एगभेयं लक्खणं वा अत्थि। उवओगो य अप्पणो अणुविहायी अत्थि। सायारोवओगस्स सविकप्पगोवओगस्स णाम एव णाणं अत्थि। बहिचिदपकासस्स, विसेसग्गहणस्स य णाम एव णाणं अत्थि।

जो जानता है वह ज्ञान है(कर्तृसाधन), जिसके द्वारा जाना जाता है वह ज्ञान है (करण साधन), जानना मात्र ज्ञान है (भावसाधन)।

(रा.वा. 1/1/24/9/1, 26/9/12), (ध.१/१,१,११५/३५३/१०) स्या. मं. १६/२१५/२७

एवंभूतनय-वक्तव्यवशात् ज्ञानदर्शनपर्यायपरिणतात्मैव ज्ञानं दर्शनं च तत्स्वभाव्यात्।

एवंभूत नय की दृष्टि में ज्ञानक्रिया में परिणत आत्मा ही ज्ञान है, क्योंकि वह ज्ञानस्वभावी है। रा.वा. १/१/५/५/१

(**एवंभूत नय**- पर्यायशब्द को उस शब्द से ध्वनित होने वाला क्रियाकाल में ही वाचन मानने वाला एवंभूतनय है। जैसे - समभिरूढ नय की अपेक्षा पुरन्दर और शचीपति (इन शब्दों के अर्थ में) भेद होने पर भी नगरों का नाश न करने के समय भी पुरन्दर शब्द इन्द्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है। परन्तु एवंभूतनय की अपेक्षा नगरों का नाश करते समय ही इन्द्र को पुरन्दर नाम से कहा जा सकता है।)

भूतार्थप्रकाशनं ज्ञानम्।

सच्चात्थस्स पकासगो सत्तिविसेसस्स णाम णाणं अत्थि।

सद्भाव-विनिश्चयोपलम्भकं ज्ञानम्।

वत्थुए णिच्चयगो धम्मं णाम णाणं अत्थि।

द्रव्यगुणपयार्याननेन जानातीति ज्ञानम्।

जेण दव्वगुणपज्जायाइं जाणंति तं णाणं अत्थि।

सम्यगवैपरीत्येन विद्यतेऽवगम्यते वस्तुस्वरूप मनयेति संवित्।।

जेण यथत्थरीदीए वत्थुं जाणदि सो संवित् (णाणं) इदि अत्थि।

णाणावरणकम्मस्स खयोवसमेण खयेण वा उप्पण्णाप्पणो सविकप्पवापारो परिणदिं वा णाणोवओगो इदि कहइ।

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही-अणाणणाणी।
मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्ख परोक्खभेयं च।।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है। ज्ञान उपयोग का एक भेद अथवा लक्षण है। और उपयोग आत्मा का अनुविधायी है। साकरोपयोग या सविल्पक उपयोग का नाम ही ज्ञान है। बाह्य चित्प्रकाश का तथा विशेष ग्रहण का नाम ही ज्ञान है।

भूतार्थप्रकाशनं ज्ञानम्।

सत्यार्थ का प्रकाश करने वाली शक्ति विशेष का नाम ज्ञान है।

सद्भाव-विनिश्चयोपलम्भकं ज्ञानम्।

वस्तु का निश्चय करने वाले धर्म को ज्ञान कहते हैं।

द्रव्यगुणपयार्याननेन जानातीति ज्ञानम्।

जिसके द्वारा द्रव्य, गुण और पर्यायों को जानते हैं वह ज्ञान है।

ध. १/१,४/१४२/३ पं. ७/२,१,३/७/२

सम्यगवैपरीत्येन विद्यतेऽवगम्यते वस्तुस्वरूप मनयेति संवित्।।

जिससे यथार्थ रीति से वस्तु जानी जाये उसे संवित् (ज्ञान) कहते हैं।

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम या क्षय से उत्पन्न आत्मा के सविकल्प व्यापार वा परिणति को **ज्ञानोपयोग** कहते है।

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही-अणाणणाणी।
मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्ख परोक्खभेयं च।। द्र.स.

णाणं अट्ठवियप्पं – मइणाणं, सुदणाणं, ओहीणाणं, कुमइणाणं, कुसुदणाणं, कु-ओहीणाणं, मणपज्जयणाणं, केवलणाणं य। जे अट्ठप्रकारस्स णाणं एव परोक्खपच्चक्खभेयेण दोपमाणरुवं अत्थि। मइणाणं, सुदणाणं, कुमइणाणं, कुसुदणाणं परोक्खपमाणं, ओहीणाणं, विभंगणाणं, मणपज्जयणाणं केवलणाणं य पच्चक्खपमाणरुवं अत्थि। जेसु कुमइणाणं, कुसुदणाणं, विभंगणाणं य मिच्छाणाणं, सेसो य सम्मत्तणाणं।

पमाणं-

णाणं होदि पमाणं।।

णाणमेव पमाणं अत्थि।

प्रमिणोति प्रमीयतेऽनेन प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम्।

जो सम्मत्तरुवेण मण्णइ (कत्तासाहणं), येण सम्मत्तरुवेण मण्णइ (करणसाहणं), पमिदि वा मत्तं (भावसाहणं) पमाणं अत्थि।

प्रमीयतेऽनेन प्रमाणम्।।

ज्ञान आठ प्रकार का है- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कु-अवधिज्ञान(विभंगज्ञान), मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान। ये आठ प्रकार का ज्ञान ही परोक्ष और प्रत्यक्ष के भेद दो प्रमाण रूप है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान परोक्षप्रमाण और अवधिज्ञान, विभंगज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण रूप है। जिसमें से कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कु-अवधिज्ञान ये तीनों मिथ्याज्ञान है शेष सम्यग्ज्ञान है।

प्रमाण-

णाणं होदि पमाणं।।

ज्ञान ही प्रमाण है। ति.प./१/८३

प्रमिणोति प्रमीयतेऽनेन प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम्।

जो अच्छी तरह मान करता है(कर्तृसाधन), जिसके द्वारा अच्छी तरह मान किया जाता है(करण साधन), या प्रमिति मात्र (भावसाधन) प्रमाण है।

स.सि./१/१०/९८/२ रा.वा./१/१०/१४९//१३

प्रमीयतेऽनेन प्रमाणम्।।

जेण पयत्थाणं णाणं हवइ, तं पमाणं अत्थि।

स्वपूर्वार्थ-व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्॥

सवस्स अपुव्वस्स (पुव्वे यस्स णिच्चयं ण हवदि इत्थं) य पयत्थाणं णिच्चयात्तगो णाणं पमाणं अत्थि।

स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम्॥

सवपरवियवसायिणाणं पमाणं अत्थि।

स्वपरविभागेनावस्थिते विश्वं विकल्पस्तदाकारावभासनम्। यस्तु मुकुरुहृदयाभाग इव युगपदवभासमानस्वपराकारार्थ-विकल्पस्तद्ज्ञानम्॥

सवपराणं विभागपुव्वगं अवट्ठिदं विस्स अत्थो अत्थि। तस्स आयाराणं अवभासणं विकप्पं अत्थि। दप्पणस्स य णिजवित्थारस्स समाणं जम्मि एगमेव सह सवपरायारं अवभासिदं हवंति, इत्थं अत्थो विकप्पणाणं अत्थि।

तस्यात्स्वपरावभासनसमर्थं सविकल्पकमगृहीतग्राहकं सम्यग्ज्ञानमेवाज्ञानमर्थे निवर्तयत्प्रमाणमित्यार्हतं मतम्॥

जिसके द्वारा पदार्थ जाना जाता है वह प्रमाण है।

क.पा./१/१,१/२७/३७/६ आ.प./९ स.म./२८/३०७/१८ न्या.दी./१/१०/११

स्वपूर्वार्थ-व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्॥

स्व व अपूर्व (पहिले से जिसका निश्चय न हो ऐसे) पदार्थ का निश्चय कराने वाला ज्ञान प्रमाण है। **प.मु./१/१**

स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम्॥

स्व-पर व्यवसायी ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। **प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार**

स्व पर के विभागपूर्वक अवस्थित विश्व अर्थ है। उसके आकारों का अवभासन विकल्प है। और दर्पण के निज विस्तार की भाँति जिसमें एक ही साथ स्व-पराकार अवभासित होते हैं, ऐसा अर्थ विकल्प ज्ञान है।

प.ध./पू./५४१ पं.ध./उ./३९१,८३७

तस्यात्स्वपरावभासनसमर्थं सविकल्पकमगृहीतग्राहकं सम्यग्ज्ञानमेवाज्ञानमर्थे निवर्तयत्प्रमाणमित्यार्हतं मतम्॥

उत्तविसयेण सपट्टं हवइ जं सवपराणं पकासगो सविकप्पगं अपुव्वत्थग्गाही य सम्मत्तणाणं एव पयत्थाणं अण्णाणं दूरकरणे समत्थो अत्थि। तं तमेव पमाणं अत्थि।

तत् प्रमाणे॥

तं पमाण दोपकारस्स। परोक्खपमाणं पच्चक्खपमाणं य।

परोक्खपमाणं – पमाणस्स भेयेसु परोक्खं पि एगं अत्थि। इंदियेहिं वियारेहिं य जो किंचि णाणं हवइ, तं परोक्खपमाणं अत्थि। छदुमत्थाणं पयत्थविण्णाणाणं एगमत्तं तमेव साहणं अत्थि। सुमरं, तक्कं, अणुमाणं इच्चेवादीओ अणेगाओ एताअ रुवाइं संति। जइपि अविसद–इंदियादीहिं उप्पण्णस्स कारणं परोक्खं इदि कहीअ, परंतु इदं अपमाणं णत्थि, यदोहि एतेण पयत्थाणं णिच्चयं उत्तियं एव दढ हवइ, जित्तियं पच्चक्खेण।

जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्ख त्ति भणिदमट्ठेसु॥

परेण जो पयत्थसंबंधीविण्णाणं अत्थि, तं परोक्खं अत्थि।

अत: यही निष्कर्ष निकला कि अपने तथा पर का प्रकाश करने वाला सविकल्पक और अपूर्वार्थग्राही सम्यग्ज्ञान ही पदार्थों के अज्ञान को दूर करने में समर्थ है। इसलिये वही प्रमाण है।

तत् प्रमाणे॥ त.सू./१/१०

वह प्रमाण दो प्रकार का है।

परोक्ष प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रमाण।

परोक्ष प्रमाण– प्रमाण के भेदों में से परोक्ष भी एक है। इन्द्रियों व विचारणा द्वारा जो कुछ भी जाना जाता है, वह सब परोक्ष प्रमाण है। छद्मस्थों को पदार्थ विज्ञान के लिये एकमात्र यही साधन है। स्मृति, तर्क, अनुमान आदि अनेकों इसके रूप है। यद्यपि अविशद व इन्द्रियों आदि से होने के कारण इसे परोक्ष कहा गया है, परन्तु यह अप्रमाण नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा पदार्थ का निश्चय उतना ही दृढ होता है, जितना कि प्रत्यक्ष के द्वारा।

जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्ख त्ति भणिदमट्ठेसु॥प्र.सा./मू./५८

पर के द्वारा होने वाला जो पदार्थ सम्बन्धी विज्ञान है, वह परोक्ष कहा गया है।

उपात्तानुपात्तपरप्राधान्यादवगमः परोक्षम्। उपात्तानीन्द्रियाणि मनश्च, अनुपात्तं प्रकाशोपदेशादि परः तत्प्राधान्यादवगमः परोक्षम्।....तथा मतिश्रुतावरणक्षयोपशमे सति ज्ञस्वभावस्यात्मनः स्वमेवार्थनुपलब्धुमसर्थस्य पूर्वोक्तप्रत्ययप्रधानं ज्ञानं परायत्तत्वात्तदुभयं परोक्षमित्युच्ये।

उपात्त-इंदियाइं मणं य अणुपात्त-पकास-उवदेसादीओ परं। परस्स पहाणदाए जं णाणं हवइ तं णाणं परोक्खं। तहा मइणाणावरणस्स सुदणाणावरणस्स य खयोवसमे सदि णाणसहावं परंतु सयं पयत्थाणं उग्गाहाय असमत्थ-अप्पणो पुव्वोत्तं पत्तयाणं पहाणदाए उप्पण्णं णाणं पराहीणत्तो परोक्खं।

विशदं प्रत्यक्षम्। परोक्षमितरत्।

अविशदं परोक्षम्।

अविसदं णाणं परोक्खं। अविसदपडिभासं परोक्खं त्ति कहइ। जस्स णाणस्स पडिभासं विसदं णत्थि, तं परोक्खपमाणं अत्थि। अविसदत्तं असपट्टदां कहइ।

परोक्खणाणस्स भेयं -

आद्ये परोक्षम्।

आदीणं दोणाणाइं, मइणाणं सुदणाणं य परोक्खपमाणं संति।

उपात्त-इन्द्रियाँ और मन तथा अनुपात्त-प्रकाश उपदेशादि पर है। पर की प्रधानता से होने वाला ज्ञान परोक्ष है। तथा उसी प्रकार मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर ज्ञस्वभाव परन्तु स्वयं पदार्थों को ग्रहण करने के लिये असमर्थ हुये आत्मा के पूर्वोक्त प्रत्ययों की प्रधानता से उत्पन्न होने वाला ज्ञान पराधीन होने से परोक्ष है। **रा.वा./१/११/६/५२/२४**

(विशदं प्रत्यक्षम्। परोक्षमितरत्।) अविशदं परोक्षम्। प.मु./३/१

अविशद ज्ञान परोक्ष है। अविशद प्रतिभास को परोक्ष कहते हैं। जिस ज्ञान का प्रतिभास विशद नहीं है वह परोक्षप्रमाण है। अविशदता अस्पष्टता को कहते हैं।

न्या.दी./३/१/५१/१

परोक्षज्ञान के भेद-

आद्ये परोक्षम्।

आदि के दो ज्ञान अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण है। त.सू./१/११

शेषचतुष्टयं परोक्षमिति।

सेसं कुमइणाणं, कुसुदणाणं, मइणाणं, सुदणाणं य एते चदुपरोक्खं।

मइणाणं – इंदियणाणस्स एव 'मइ अहिणिबोहं वा' इयं सण्णा अत्थि। इदं दंसणपुव्वगं अवग्गहस्स, ईहाए, अवायस्स धारणाए य कमेण उप्पज्जइ। चउत्थाणं एव उप्पण्णस्स णियमो ण। एगं, दो, त्ति पि हविदूणं छुट्टिदुं सक्कंति। धारणाए पच्छा कमेण सुमरदि, पत्तहिणाणं, तक्कं य वात्ति वा णाणं उप्पज्जंति। एतेसिं सव्वेसिं पि मइणाणं सण्णा। धारणाए पुव्वणाणाइं पंचेंदियाणं णिमित्तेण, तत्तो य अग्गस्स णाणाइं मणस्स णिमित्तेण हवंति। तक्कस्स पच्छा अणुमाणं आगच्छइ, जो सुदणाणे समाहिदं। एगो, अणेगो, धुवं, अधुवं आदी–बारसपकाराणं अत्था एतस्स मइणाणस्स विसयेण इदं अणेगपकारस्स हवंति।

इन्द्रियैर्मनसा च यथासमर्थो मन्यते अनया मनुते मननमात्रं वा मतिः।

इंदियमणेहिं यहाजोग्गं पयत्थो जो मणणं करइ (कत्तासाहणं), जेहिं मणणं करित्ता (करणसाहणं), मणणमत्तं वा (भावसाहणं) मइ भणदि।

शेषचतुष्टयं परोक्षमिति।

शेष कुमति, कुश्रुत, मति और श्रुतज्ञान ये चार परोक्ष है। **द्र.स./टी./५/१५/२**

मतिज्ञान– इन्द्रियज्ञान की ही 'मति या अभिनिबोध' यह संज्ञा है। यह दर्शनपूर्वक अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के क्रम से उत्पन्न होता है। चारों के ही उत्पन्न होने का नियम नहीं है। एक, दो या तीन भी होकर छूट सकते हैं। धारणा के पश्चात् क्रम से स्मृति, प्रत्यभिज्ञान और तर्क या व्याप्ति ज्ञान उत्पन्न होता है। इस सबों की भी मतिज्ञान संज्ञा है। धारणा के पहले वाले ज्ञान पंचेन्द्रियों के निमित्त से और उससे आगे के ज्ञान मन के निमित्त से होते हैं। तर्क के पश्चात् अनुमान का नम्बर आता है जो श्रुतज्ञान में गर्भित है। एक, अनेक, ध्रुव, अध्रुव आदि १२ प्रकार के अर्थ इस मतिज्ञान के विषय होने से यह अनेक प्रकार का हो जाता है।

इन्द्रियैर्मनसा च यथासमर्थो मन्यते अनया मनुते मननमात्रं वा मतिः।

इन्द्रिय और मन के द्वारा यथायोग्य पदार्थ जो मनन करता है(कर्तृ साधन), जिसके द्वारा मनन किये जाते हैं(करण साधन), या मनन मात्र(भाव साधन) मति कहलाता है।**स.सि./१/९/९३/११**

अहिमुहणियमिय बोहणमाभिणिबोहियमणिंदि-इंदियजं।.....

मणेंदियाणं सहायेण उप्पण्णं, अहिमुह-णियमिदपयत्थाणं य बोहस्स आहिणिबोहिगणाणं भणइ।

पञ्चभिरिन्द्रर्यमनसा च यदर्थग्रहणं तन्मतिज्ञानम्।

पंचेंदियमणेहिं जो पयत्थाणं उग्गहदि, तं मइणाणं अत्थि।

इंदियणाइंदिएहि सद्द-रस-परिसरूवगंधादिविसएसु ओग्गह-ईहावाय-धारणाओ मदिणाणं।

इंदियमणाणं णिमित्तेण सद्दो, रसो, फासो, रुवं, गंधं य इदि विसयेसु अवग्गह-ईहा-अवाय-धारणारुवं जो णाणं हवइ, तं मइणाणं होदि।

यत्तदावरणक्षयोपशमादिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बनाय मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषणावबुध्यते, तदाभिनिबोधिकज्ञानम्।

आभिनिबोधिकं मतिज्ञानम्। मइणाणावरणस्स खयोवसमेण, इंदियमणाणं य अवलंबणेण मुत्तामुत्तदव्वाणं विकलं (एगदेसरुवेण) विसेसत्तो

अहिमुहणियमिय बोहणमाभिणिबोहियमणिंदि-इंदियजं।.....

मन और इन्द्रिय की सहायता से उत्पन्न होने वाले, अभिमुख और नियमित पदार्थ के बोध को आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं। **पं.स./१/२१४**

पञ्चभिरिन्द्रर्यमनसा च यदर्थग्रहणं तन्मतिज्ञानम्।

पाँच इन्द्रियों और मन से जो पदार्थ का ग्रहण करता है, वह मतिज्ञान है।

ध.१/१/,१,११५/३५४/१

इंदियणाइंदिएहि सद्द-रस-परिसरूवगंधादिविसएसु ओग्गह-ईहावाय-धारणाओ मदिणाणं। क.पा./१/१०१/२८/४२/४

इन्द्रिय और मन के निमित्त से शब्द रस, स्पर्श, रूप और गन्धादि विषयों में अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणारूप जो ज्ञान होता है, वह मतिज्ञान है।

यत्तदावरणक्षयोपशमादिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बनाय मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषणावबुध्यते, तदाभिनिबोधिकज्ञानम्।

पं.का./त.प्र./४१

आभिनिबोधिकं मतिज्ञानम्। मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम से और इन्द्रिय मन के अवलम्बन से मूर्त और अमूर्त द्रव्य का विकल अर्थात् एकदेश रूप से विशेषत:

(सांववहारिगपच्चक्खरुवेण) जो अवबोहदि, तं अहिणिबोहिगणाणं हवए। आहिणिबोहिगं एव मइणाणं इदि भणदे।

मइ, सुमरदि आदीणं एगत्थदा -

मतिस्मृतिसंज्ञाचिंताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।

मइ, सुमरदि, सण्णा, चिंता, अहिणिबोहं य इदि अणत्थांतरं। वित्थारेण उत्तं -

१. मइ - इदं णाणं इंदियमणेहिं उप्पज्जइ, वट्टमाणकालस्स य विसयं हवइ।

२. सुमरदि - इदं पुव्वाणुभूदवत्थुं सुमरइ, अतो जादिसुमरणं णाणं सुमरदिणाणं अत्थि।

३. सण्णा - पुव्वाणुभूदो वट्टमाणे य अणुभवं पच्चक्खवत्थुं य णिरक्खिदूणं जो णाणं हवइ, तं सण्णा णामगं मइणाणं कहदि। एअं णाणं पत्तहिणाणं पि कहइ।

४. चिंता - यस्स सदि जो हवइ, यस्स वा ण सदि ण हवइ, एतस्स पकारस्स णाणं चिंता तक्कं वा हवइ। यहा- अग्गीअ सदि एव धूमं हवइ, अग्गीए विणा ण।

(सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष रूप से) जो अवबोध करता है, वह अभिनिबोधिक ज्ञान है। आभिनिबोधिक को ही मतिज्ञान कहते है।

मति, स्मृति आदि की एकार्थता-

मतिस्मृतिसंज्ञाचिंताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।

त.सू./१/१३

१. मति- यह ज्ञान इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होता है तथा वर्तमान काल का विषय करता है।

२. स्मृति- यह पूर्वानुभूत वस्तु का स्मरण कराता है अतः जातिस्मरण ज्ञान स्मृतिज्ञान है।

३. संज्ञा- पूर्वानुभूत और वर्तमान में अनुभव या प्रत्यक्ष वस्तु को देखकर जो ज्ञान होता है वह संज्ञा नामक मतिज्ञान कहलाता है। इस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान भी कहते हैं।

४. चिंता- जिसके होने पर जो होता है वा जिसके नहीं होने पर नहीं होता है इस प्रकार के ज्ञान को चिंता या तर्क कहते हैं। जैसे अग्नि के होने पर ही धुँआ होता है, अग्नि के बिना नहीं।

५. अहिणिबोहं - चिंताए तक्कणाए वा पच्छा जो णाणं हवइ, तं अहिणिबोहं हवइ। यहा- यत्थ अग्गि अत्थि, यदोहि धूमं अत्थि, इत्थं साहणेण जो साहस्स णाणं अहिणिबोहं अणुमाणं वा भणदि।

मइ, सुमरदि, सण्णा, चिंता, अहिणिबोहं य एताणं मइणाणस्स पज्जायवायी संति। जइपि एताणं सद्दाणं पकिदि विउपत्ति वा पुह-पुह संति, ता पि रूढीए एते पज्जायवायी संति। जहा- इंदो, सक्को, पुरंदरो वा। एतेसु जइपि इंदण-आदि किरियाणं अपेक्खाए भेयो अत्थि। ता पि एते सव्वे एगा सचीपईए वायगाओ सण्णाओ संति। किंतु एते मइ-आदि मइणाणावरणकम्मस्स खयोवसमरुवं णिमित्तेण उप्पण्णं उवओगं उल्लंघणं ण करंति, अयं अत्थो अत्थ विवक्खिदं अत्थि। अहवा पइये इदि सद्दो पकारत्थवायी अत्थि, जस्स अणुसारेण अयं अत्थं हवइ, जं एतेण पकारेण एते मइ-आदि मइणाणस्स पज्जायवायीसद्दा संति। अहवा पइये मइसद्दो अहिहेयवायी अत्थि, जस्स अणुसारेण अयं अत्थं हवइ, जं मइ, सुमरइ, सण्णा, चिंता, अहिणिबोहं एतस्स जो अत्थं कहइ, सो एगो एव।

---

५. अभिनिबोध- चिंता वा तर्कणा के बाद जो ज्ञान होता है वह अभिनिबोध है। जैसे- यहाँ अग्नि है क्योंकि धुँआ है ऐसा साधन से होने वाले साध्य के ज्ञान को अभिनिबोध या अनुमान कहते हैं।

मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध ये मतिज्ञान के पर्यायवाची है। यद्यपि इन शब्दों को प्रकृति या व्युत्पत्ति अलग-अलग है, तो भी रूढ़ि से ये पर्यायवाची है। जैसे- इन्द्र, शक्र, पुरन्दर। इनमें यद्यपि इन्दन आदि क्रियाओं की अपेक्षा भेद है तो भी ये सब एक शचीपति की वाचक संज्ञायें हैं। अब यदि समभिरूढ़ नय की अपेक्षा इन शब्दों का में भी पाया जाता है। किन्तु ये मति आदि मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशमरूप निमित्त से उत्पन्न हुये उपयोग को उल्लंघन नहीं करते हैं, यह अर्थ यहाँ पर विवक्षित है। अथवा प्रकृत में इति शब्छ प्रकारार्थवाची है, जिसके अनुसार यह अर्थ होता है कि इस प्रकार ये मति आदि मतिज्ञान के पर्यायवाची शब्द है। अथवा प्रकृत में मति शब्द अभिधेयवाची है, जिसके अनुसार यह अर्थ होता कि मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध इनके द्वारा जो अर्थ कहा जाता है, वह एक ही है।

मइणाणस्स भेय-पभेयाइं -

१. अवग्गहो, ईहा, अवायो, धारणा य। अवग्गो दोपकारस्स- वीण्जणावग्गहो अत्थावग्गहो य। पइएगस्स बारस-बारसभेया - बहु, बहुविहं, खिप्पं, अणिस्सिदं, अणुत्तं, अधुवं, एगो, एगविहं, अखिप्पं, णिस्सिदं, उत्तं, धुवं य। वीण्जणावग्गहो चदुपकारस्स- फासं, रसणा, घाणं, कण्णं य। अत्थावग्गहो छट्ठपकारस्स- फासं, रसणा, घाणं, चक्खु, कण्णं, मणं। एतेण पकारेण मइणाणस्स सम्पुण्णं ३३६ भेया संति।

२. मइ, सुमरदि, सण्णा (पत्तहिणाणं), चिंता(तक्कं), अहिणिबोहं य एताइं सव्वाइं पज्जायवायी णामाइं संति।

३. मइणाणस्स त्तिपकारो- उवलद्धि, भावणा उवओगो य।

४. सवसंवेदणणाणं, इंदियणाणं, सुमरणं, पत्तहिणाणं, तक्कं, सवत्थाणुमाणं, बुद्धि, मेहा आदीओ सव्वाओ मइणाणस्स पकाराइं संति।

५. तं मइणाणं अवग्गहादीणं भेयेण, अहवा वरकोट्ठबुद्धि, बीजबुद्धि,

---

मतिज्ञान के भेद-प्रभेद-

१. अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। अवग्रह दो प्रकार का है- व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह। प्रत्येक के बारह-बारह भेद- बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनि:सृत, अनुक्त, अध्रुव, एक, एकविध, अक्षिप्र, नि:सृत, उक्त, ध्रुव। व्यंजनावग्रह चार प्रकार का- स्पर्शन, रसना, घ्राण, श्रोत्र। अर्थावग्रह छ: प्रकार का - स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन। इस प्रकार से मतिज्ञान के कुल ३३६ भेद हो जाते हैं।

२. मति, स्मृति, संज्ञा(प्रत्यभिज्ञान), चिंता(तर्क), अभिनिबोध ये सब पर्यायवाची नाम है। त.सू./१/१३

३. मतिज्ञान के तीन प्रकार है- उपलब्धि, भावना और उपयोग। पं.का. ता.वृ./ प्रक्षेपक गाथा//४३-१/८५

४. स्वसंवेदनज्ञान, इन्द्रियज्ञान, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, स्वार्थानुमान, बुद्धि, मेधा आदि सब मतिज्ञान के प्रकार है। त.सा./१/१९-२०

५. वह मतिज्ञान अवग्रह आदि के भेद से अथवा वर कोष्ठ बुद्धि, बीजबुद्धि,

पदाणुसारीबुद्धि, सम्भिण्णसोत्तबुद्धि य एआणं चदुरिद्धीणं भेयेहिं चदुपकाराणं संति।

६. सुदणाणं असंखादलोकपमाणं अत्थि। मइणाणं पि इत्तियं एव, यदोहि सुदणाणं मइणाणपुव्वगं हवइ। अहवा कारणस्स भेदेण कज्जस्स भेदं हवइ, अतो एव ते पि असंखात-लोकपमाणं संति।

१. <u>अवग्गहमइणाणं</u> - इंदियणाणं उप्पत्तीए कमे सव्वपढमं इंदियपयत्थाणं सण्णिकस्से सदि जो एगं झलकं मत्तं व्व पदीदिं हवइ, सो अवग्गहो। पच्छा उवओगस्स ठिरदाए कारणेण ईहाए अवायेण य तस्स णिच्चयं हवइ। णाणस्स एताइं त्ति-अंगाइं महावेगेण णीसरस्स कारणेण पायो पदीदिगोयरं ण हवंति।

अवगृह्यते अनेन घटाद्यर्था अवग्रहः।

जेण घटादि-पयत्थाणं जाणिओ, सो अवग्गहो।

विसयविसयीणं संबंधस्स पच्छा पढमं उग्गहं अवग्गहं कहदि। विसयविसयाणं सण्णिपादे सदि दंसणं हवइ। तस्स पच्छा जो पयत्था उग्गहंति, सो अवग्गहो।

पदानुसारी बुद्धि और सम्भिन्नश्रोतृबुद्धि इन चार ऋद्धियों के भेद से चार प्रकार का है। पं.का./ता.वृ./४३-१/८६/३

६. श्रुतज्ञान असंख्यात लोकप्रमाण है। मतिज्ञान भी इतने ही हैं, क्योंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है। अथवा कारण के भेद से क्योंकि कार्य का भेद पाया जाता है, अतएव वे भी असंखात लोकप्रमाण है। ध./१२/४,२,१४,५,/४८०/५

अवग्रह मतिज्ञान- इन्द्रिय ज्ञान को उत्पत्ति के क्रम में सर्व प्रथम इन्द्रिय और पदार्थ का सन्निकर्ष होते ही जो एक झलक मात्र सी प्रतीत होती है, उसे अवग्रह कहते हैं। तत्पश्चात् उपयोग की स्थिरता के कारण ईहा व अवाय के द्वारा उसका निश्चय होता है। ज्ञान के ये तीनों अंग बड़े वेग से बीत जाने के कारण प्रायः प्रतीति गोचर नहीं होते।

अवगृह्यते अनेन घटाद्यर्था अवग्रहः।

जिसके द्वारा घटादि पदार्थ जाने जाते हैं वह अवग्रह है। ध.१३/५,५,३७/२४२/२

विषय और विषयी के संबंध के बाद होने वाले प्रथम ग्रहण को अवग्रह कहते हैं। विषय और विषयों का सन्निपात होने पर दर्शन होता है। उसके पश्चात् जो पदार्थ को ग्रहण होता है वह अवग्रह कहलाता है। **स.सि./१/१५/१११**

इंदियपयत्थाणं संबंधस्स पच्छा उप्पण्णं सामण्णं अवभासं (दंसणं), तदणंतरं, अवांतर-सत्ताजादीए य जुत्तो वत्थुं उग्गहागो णाणविसेसं अवग्गहो इदि भणदि। जहा- अयं पुरिसो अत्थि।

ओग्गहे योदाणे साणे अवलंबणा मेहा।

अवग्गहो, अवहाणं, साणं, अवलंबणा, मेहा य एतस्स अवग्गहस्स पज्जायवायी णामाइं संति।

अवग्गहस्स भेयो -

द्विविधोऽवग्रहो विशदाविशदावग्रहभेदेन।

विसदाविसदावग्गहाणं भेयेण अवग्गहो दोपकारस्स।

१. विसदावग्गहो - णिण्णयरुवं हवित्तं अणियमेण ईहा, अवायो धारणाणाणस्स उप्पत्तीए कारणं अत्थि।

२. अविसदाग्गहो - भासा, आयु, रुवादिविसेसाणं उग्गहं ण करिदूणं ववहारस्स कारणभूदो पुरिसमत्तस्स सत्तादिविसेसं उग्गाहगो अणियमेण य जो ईहा-आदीए उप्पत्तीए कारणं अत्थि, सो अविसदावग्गहो अत्थि।

इन्द्रिय और पदार्थ के सम्बन्ध होने के बाद उत्पन्न हुये सामान्य अवभास(दर्शन), के अनंतर होने वाले और अवान्तर सत्ताजाति से युक्त वस्तु को ग्रहण करने वाले ज्ञानविशेष्ज्ञ को अवग्रह कहते हैं जैसे- 'यह पुरुष है।' **न्या.दी./२/११/३१**

ओग्गहे योदाणे साणे अवलंबणा मेहा।

अवग्रह, अवधान, सान, अवलम्बना और मेधा ये अवग्रह के पयार्यवाची नाम है। **ष.ख./१३/५,५**

अवग्रह के भेद- द्विविधोऽवग्रहो विशदाविशदावग्रहभेदेन।

ध./९/४,१,१४५/१४५/३

विशद अवग्रह और अविशद अवग्रह के भेद से अवग्रह दो प्रकार का है।

विशद अवग्रह- निर्णय रूप होता हुआ अनियम से ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान की उत्पत्ति का कारण है।

अविशद अवग्रह- भाषा, आयु व रूपादि विशेषों को ग्रहण न करके व्यवहार के कारण भूत पुरुषमात्र के सत्त्वादि विशेष को ग्रहण करने वाला तथा अनियम से जो ईहा आदि की उत्पत्ति में कारण है वह अविशदावग्रह है।

अवग्गहो दोपकारस्स हवइ- वीण्जणावग्गहो अत्थावग्गहो य।

१. वीण्जणावग्गहो - वयत्तग्गहणेण पुव्वं-पुव्वं वीण्जणावग्गहो हवइ, फासिदूणं जो रस-फास-सद्द-गंधविसयगा उग्गहइ, सो वीण्जणावग्गहो अत्थि। वीण्जणावग्गहो णवरि चदुइंदियेहिं हवइ - फासेंदियं, रसणेंदियं, घाणेंदियं, कण्णेंदियं य।

२. अत्थावग्गहो- विउत्तग्गहणस्स णाम अत्थावग्गहो। अपात्तत्थस्स उग्गहणं, दूरेण य एव जो चक्खु-आदि-इंदियमणेहिं विसयाणं उग्गहंति, सो संखेपेण अत्थावग्गहणाणं जाणणीयं। अत्थावग्गहो पंचेंदियमणेहिं हवइ।

इंदियं - सरीरधारी जीवं णाणाय साहणरुव-फासादिपंचेंदियाइं हवंति। मणं दु ईसद इंदियं मण्णइ। उवरि जो णिरक्खइ, ते बहि-इंदियाइं संति, ते दव्वेंदियं पि संति। एतेसु पि चक्खपटलादि दु तस्स तस्स इंदियस्स उवकरणस्स कारणेण उवकरणं कहइ, अंतेवासी य चक्खुए अप्पपदसेसाणं य रयणाविसेसो णिवित्ति णाम इंदियं अत्थि।

अवग्रह दो प्रकार का होता है- व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह।

व्यंजनावग्रह-व्यक्त ग्रहण से पहिले-पहिले व्यंजनावग्रह होता है, छूकर जो रस, स्पर्श, शब्द और गंध विषयक ग्रहण होता है, वह व्यंजनावग्रह है। व्यंजनावग्रह केवल चार इंद्रियों से होता है- स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय।

स.सि. १/१८/११७/६

अर्थावग्रह- व्यक्त ग्रहण का नाम अर्थावग्रह है। अप्राप्त अर्थ के ग्रहण करना और दूर से ही जो चक्षुरादि इन्द्रियों तथा मन के द्वारा विषयों का ग्रहण होता है, उसे संक्षेप से अर्थावग्रहज्ञान जानना चाहिये। अर्थावग्रह पाँच इन्द्रिय और मन से होता है।

स.सि. १/१८/११७/६

इन्द्रिय- शरीरधारी जीव को जानने के साधन रूप स्पर्शनादि पाँच इन्द्रियाँ होती है। मन को ईषत् इन्द्रिय स्वीकार किया गया है। ऊपर दिखाई देनेवाली तो बाह्य इंद्रियाँ हैं। इन्हें द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। इनमें भी चक्षुपटलादि तो उस उस इन्द्रिय के उपकरण होने के कारण उपकरण कहलाते हैं, और अंदर में रहने वाला आँख की व आत्म प्रदेशों की रचना विशेष निवृत्ति इन्द्रिय कहलाती है।

यदोहि समीचीणेण जाणस्स कज्जं तेहिं इंदियेहिं हवंति, उवकरणेहिं ण। परंतु एतस्स पच्छा णिवासिदस्स जीवस्स णाणस्स खयोवसमं उवओगो य भावेंदियं अत्थि, जो साक्खा जाणस्स साहणं अत्थि। उवरोत्तं छह-इंदियेसु चक्खुमणाइं सवविसयं फासेण विणा एव जाणदि, तं अपत्तकारी, सेसो इंदियाइं पत्तकारी अत्थि। संयमस्स अपेक्खाए जिह्वा उवत्थो य एआइं इंदियाइं अदिपबलाइं संति। जं य जोगीजणा एतेसिं पुण्णरुवेण णिरोहं करेंति।

१. फासेंदियं - जस्स इंदियस्स मज्झमेण फासिदूणं सीदं-उसहं, कडा-णरम, रुक्खं सिणग्हं, अभारी-भारी य एतस्स अट्ठपकारस्स फासाणं णाणं हवइ, तं फासेंदियं अत्थि।

२. रसणेंदियं - जस्स इंदियस्स मज्झमेण चखिदूणं खट्टा, मीठा, कडवा, चरपरा, कसायला य एतस्स पंचरसाणं णाणं हवइ, तं रसणा इंदियं।

३. घाणेंदियं- जस्स इंदियस्स मज्झमेण घाणिदूणं सुगंधं दुग्गंधं य णाणं हवइ, तं घाणेंदियं।

क्योंकि वास्तव में जानने का काम इन्हीं इन्द्रियों से होता है उपकरणों से नहीं। परन्तु इसके पीछे रहने वाले जीव के ज्ञान का क्षयोपशम व उपयोग भावेन्द्रिय है, जो साक्षात् जानने का साधन है। उपरोक्त छहों इन्द्रियों में चक्षु और मन अपने विषय को स्पर्श किये बिना ही जानती है, इसलिये अप्राप्यकारी है शेष इन्द्रियाँ प्राप्यकारी है। संयम की अपेक्षा जिह्वा व उपस्थ ये दो इन्द्रियाँ अत्यंत प्रबल हैं और इसलिये योगीजन इनका पूर्णतया निरोध करते हैं।

जै.सि.को.भाग प्रथम/पृ.३००

स्पर्शन इन्द्रिय- जिस इंदिय के माध्यम से स्पर्श करके ठंडा-गरम, कडा-नरम, रूखा-चिकना और हल्का-भारी इन आठ प्रकार के स्पर्शों का ज्ञान होता है, वह स्पर्शेन्द्रिय है।

रसना इन्द्रिय- जिस इंद्रिय के माध्यम से चखकर खट्टा, मीठा, कडवा, चरपरा और कसायला इन पाँच रसों का ज्ञान होता है वह रसना इंदिय है।

घ्राण इन्द्रिय- जिस इंद्रिय के माध्यम से सूँघकर सुंगध और दुर्गंध का ज्ञान होता है, वह घ्राणेन्द्रिय है।

४. चक्खु-इंदिय- जस्स इंदियस्स मज्झमेण णिरक्खिदूणं सवेदं, णीलं, पीदं, रत्तं, किसणं य पंचवण्णाणं णाणं हवइ, तं चक्खु इंदियं।

५. कण्णेंदिय - जस्स इंदियस्स मज्झमेण सुणिऊणं णाणं हवइ, तं कण्णेंदियं अत्थि।

मणं (अदींदियं)-

२. ईहा- जइ पि साहारणत्तो पदीदीए ण आगमइ, परंतु इंदियेहिं पयत्थं जाणे कमं आगमइ। पुव्वं अवग्गहो हवइ, पच्छा ईहा आदि। अवग्गहेण उग्गहणं करिदा अदि-असपट्टग्गहणं सपट्टकरणं पइ उवओगस्स उण्मुहदा विसेसं ईहा कहइ।

विसेसो-

१. णेहा संदेहरुवा विचारबुद्धीदो संदेहविणासुवलंभा।

ईहाणाणं संदेहरुवं णत्थि, यदोहि ईहात्तगवियारं बुद्धीए संदेहस्स विणासं हवइ।

२. अविसदावग्गहस्स पच्छा जं णाणं हवइ, सा एव ईहा। इत्थं कोवि एकांतणियमो णत्थि, यदोहि विसदग्गहेण 'अयं पुरिसो अत्थि' एतेण पकारेण उग्गहिदा पयत्थेसु

चक्षु इन्द्रिय- जिस इन्द्रिय के माध्यम से श्वेत, नीला, पीला, लाल और कृष्ण इन पाँच वर्णों का ज्ञान होता है वह चक्षु इन्द्रिय है।

श्रोत्र इन्द्रिय- जिस इन्द्रिय के माध्यम से सुनकर ज्ञान होता है, वह श्रोत्र इन्द्रिय है।

मन (अतीन्द्रिय)-

ईहा- यद्यपि साधारणत: प्रतीति में नहीं आता परन्तु इन्द्रियों द्वारा पदार्थ को जानने में क्रम पड़ता है। पहले अवग्रह होता है, तत्पश्चात् ईहा आदि। अवग्रह द्वारा के द्वारा ग्रहण किये गये अत्यन्त अस्पष्ट ग्रहण को स्पष्ट करने के प्रति उपयोग की उन्मुखता विशेष को ईहा कहते हैं।

विशेष-१. णेहा संदेहरुवा विचारबुद्धीदो संदेहविणासुवलंभा।

ध./६/१,९,१,१४/१७/३

ईहाज्ञान संदेहरूप नहीं है, क्योंकि ईहात्मक विचार बुद्धि से संदेह का विनाश पाया जाता है।

२. अविशद अवग्रह के पीछे होने वाली ही ईहा है, ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है, क्योंकि, विशद अवग्रह के द्वारा 'यह पुरुष है' इस प्रकार ग्रहण किये

पि किं अयं दाक्खिणात्तो अत्थि, उदीच्चो वा अत्थि, एतेण पकारेण संसयं पात्तं णराणं पि ईहाणाणस्स उप्पत्ति उवलद्धं हवइ।

३. अवायो – अवेयते निश्चीयते मीमांसितोऽर्थोऽनेनेत्यवायः।

जेण मीमांसिदो अत्थो 'अवेयते' णिच्चिदं करेइ, सो अवायो।

विशेषनिर्ज्ञानाद्याथात्म्यावगमनमवायः।

विसेसस्स णिण्णयेण जो यथत्थं णाणं हवइ, सो अवायो अत्थि। जहा– उप्पदणं, णिपदणं, पक्ख–विक्खेव आदीहिं 'अयं बको पंत्ति एव अत्थि, पदाआ णत्थि' इत्थं णिच्चयं अवायो अत्थि।

अवायो ववसायो बुद्धी विण्णाणि आउंडी पच्चाउंडी।

अवायो, ववसायो, बुद्धि, विज्जत्ति, आमुण्डा पडि–आमुण्डा एताइं पज्जायाइं णामाइं संति।

४. धारणा– अवेतस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा। यथा– सैवेयं बलाका पूर्वाद्धे यामहमद्राक्षमिति।

गये पदार्थ में भी क्या यह दाक्षिणात्य है या उदीच्य है इस प्रकार के संशय को प्राप्त हुये मनुष्य के भी ईहा ज्ञान की उत्पत्ति उपलब्ध होती है।

अवाय– अवेयते निश्चीयते मीमांसितोऽर्थोऽनेनेत्यवायः।

ध./१३/५,५,३९/२४३/३

जिसके द्वारा मीमांसित अर्थ 'अवेयते' अर्थात् निश्चित किया जाता है वह अवाय है।

विशेषनिर्ज्ञानाद्याथात्म्यावगमनमवायः। स.सि./१/१५/१११/६

विशेष के निर्णय द्वारा जो यथार्थ ज्ञान होता है उसे अवाय कहते हैं। जैसे उत्पतन, निपतन, पक्ष–विक्षेप आदि के द्वारा 'यह बक पंक्ति ही है, ध्वजा नहीं' ऐसा निश्चय होना अवाय है।

अवायो ववसायो बुद्धी विण्णाणि आउंडी पच्चाउंडी।

ष.ख./१३/५,५/सू./३९/२४३

अवाय, व्यवसाय, बुद्धि, विज्ञप्ति, आमुण्डा और प्रत्यामुण्डा ये पर्याय नाम है।

धारणा– अवेतस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा। यथा– सैवेयं बलाका पूर्वाद्धे यामहमद्राक्षमिति। स.सि./१/१५/१११/७

अवायणाणेण जाणिदा वत्थुं जेण कारणेण कालांतरे विसुमरणं ण हवइ, सा धारणा अत्थि। जहा- इयं सा एव पताआ अत्थि, जो अहं पुव्वं णिरक्खीअ।

धरणी धारणा ट्ठवणा कोट्ठा पदिट्ठा।

धरणी, धारणा, ठापणा, कोट्ठा, पइट्ठा एताइँ एकत्थवायी णामाइँ संति।

अवग्गहो, ईहा, अवायो, धारणा य एताणं चदुमइणाणाणं बारस-बारसविसया संति, ते णिम्णा संति -

(१) बहु, (२)बहुविहं, (३)खिप्पं, (४)अणिस्सिदो, (५)अणुत्तं, (६)अधुवं, (७)एगो, (८)एकविहं, (९)अखिप्पं, (१०)निस्सिदो, (११)उत्तं, (१२)अधुवं य।

१. बहु- बहुसद्दो संखावायी विपुलदावायी य रुवेण उग्गहणीयं। यदोहि एतेसु दोसु कोवि विसेसदा ण संति। संखावायी विपुलदावायी य दोण्णि समाणाइँ संति। जहा- संखावायी एगं, दो, बहु आदीओ। विपुलदावायी जहा- बहुपकारेण ओदणं, बहुपकारेण दाल आदीओ।

अवाय ज्ञान के द्वारा जानी गयी वस्तु का जिस कारण से कालान्तर मं विस्मरण नहीं होता है उसे धारणा कहते हैं। जैसे- यह वही पताका है जिसे मैंने पहले देखा था।

धरणी धारणा ट्ठवणा कोट्ठा पदिट्ठा। ष.ख./१३/५,५/सू./४०/२४३

धरणी धारणा स्थापना कोष्ठा और प्रतिष्ठा ये एकार्थवाची नाम है।

अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा इन चारों मतिज्ञान के १२-१२ विषय हैं, जो कि निम्न हैं-

(१) बहु, (२)बहुविध, (३)क्षिप्र, (४)अनि:सृत, (५)अनुक्त, (६)ध्रुव, (७)एक, (८)एकविध, (९)अक्षिप्र, (१०)नि:सृत, (११)उक्त, और (१२)अध्रुव।

बहु- बहु शब्द संख्यावाची और विपुलतावाची रूप से ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि इन दोनों में कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् संख्यावाची और वैपुल्यवाची दोनों समान है। जैसे- संख्यावाची एक, दो, बहु आदि। वैपुल्यवाची जैसे- बहुत से भात, बहुत-सी दाल आदि।

२. बहुविहं - विहसद्दो पकारवायी वट्टइ, अतो बहुपकारस्स पयत्था बहुविहं कहइ।

३. खिप्पं - खिप्पस्स उग्गहणं झटिति परिणमणं करइ, तं खिप्पं।

४. अणिस्सिदं - जस्स पयत्थस्स एगदेसं णिरक्खिऊणं सव्वदेसस्स णाणं हवइ, तं अणिस्सिदेण उग्गहीदं अत्थि। जस्स पयत्थस्स पुण्णरुवेण सो एव उदगमं णत्थि, तस्स णाणाय अणिस्सिदं उग्गहीअ।

५. अनुत्तं - वयणेण विणा उत्तं एव अहिपायेण वत्थूए सरुवं उग्गहणं अणुत्तं अत्थि।

६. धुवं - बहुकालपज्जत्तं णिरंतरं वत्थूए सरुवस्स यथत्थं उग्गहणं हवदु, तं धुवग्गहणं कहइ।

७. एगो- एगपयत्थस्स णाणं एगो कहइ।

८. एकविहो - एगपकारस्स पयत्थस्स णाणं एकविहो कहइ।

९. अखिप्पं - चिरकालेण सणियं-सणियं उग्गहणं अक्षिप्पं अत्थि।

बहुविध- विध शब्द प्रकार वाची है अत: बहु प्रकार के पदार्थों को बहुविध कहते हैं।

क्षिप्र- क्षिप्र का ग्रहण शीघ्रता का ज्ञान कराने के लिये है। जिस का ज्ञान शीघ्र होता है वा जो पदार्थ बिजली के समान शीघ्र रूप से परिणमन कर रहा है उसको क्षिप्र कहते हैं।

अनि:सृत-जिस पदार्थ के एकदेश को देखकर सर्वदेश का ज्ञान होता है वह अनि:सृत से गृहीत है। जिस पदार्थ का पूर्ण रूप से वही उद्‌गम नहीं है, उसका ज्ञान कराने के लिये अनि:सृत को ग्रहण किया है।

अनुक्त- वचन से बिना कहे ही अभिप्राय मात्र से वस्तु के स्वरूप को ग्रहण करना अनुक्त है।

ध्रुव- बहुतकाल तक निरंतर वस्तु के स्वरूप का यथार्थ ग्रहण होता रहे उसको ध्रुव ग्रहण कहते हैं।

एक- एक पदार्थ के ज्ञान को एक कहते हैं।

एकविध- एक प्रकार के पदार्थ का ज्ञान एकविध है।

अक्षिप्र- चिरकाल से धीरे-धीरे ग्रहण करना अक्षिप्र है।

१०. णिस्सियो - सव्वरुवेण उदगमपयत्थस्स अवग्गहो णिस्सियो अत्थि।

११. उत्तं - परेसिं वयणाइँ सुणिदूणं जं णाणं हवइ, तं उत्तं होइ।

१२. अधुवं - जस्स णाणं बहुकालपज्जत्तं उग्गहणे समत्थो ण हविदु, तं अधुवं होदि।

एतेण पकारेण बारसपयारस्स अवग्गहो हवदि। एतेण पयारेण ईहाए, अवायस्स, धारणाए य पि बारस-बारसपयारस्स हवंति। अवग्गहस्स ईहाए, अवायस्स धारणाए जोगिदूणं सम्पुण्णं ४८ भेया संति। एते पडिएक्कं ४८ भेया फासादि-पंचेंदियमणेहिं गुणा करणे मइणाणस्स भेया पगटंति।

एते बहु-अवग्गहादि-मइणाणावरणस्स खयोवसमस्स पक्कस्सेण उप्पज्जंति। मइणाणावरणस्स खयोवसमस्स पक्कस्सं छुड्डिदूणं अण्णसुदणाणादीणं पक्कस्सेण ण हवंति। अतो एते मइणाणस्स भेयाइँ संति। तेसु बहु-आदीसु बहु सव्वसेट्ठो अत्थि, अतो सव्वपढमं बहुं उग्गहीअ। एतेण पयारेण बहुविहादीसु पि पुव्वस्स पुव्वस्स णाणं अग्गस्स णाणत्तो सेट्ठो संति, अतो पुव्वस्स पुव्वस्स णाणं सेट्ठे सदि सुत्ते एतस्स कमेण उग्गीअ, यदोहि जो सेट्ठो हवइ, तस्स गहणं पुव्वमेव हवइ।

निःसृत- सम्पूर्ण रूप से उद्गम (बाह्य प्रकट) पदार्थ का अवग्रह निसृत है।

उक्त- दूसरों के वचन को सुनकर जो ज्ञान होता है वह उक्त है।

अध्रुव- जिसका ज्ञान बहुत काल तक ग्रहण न किया जा सके वह अध्रुव है।

इस प्रकार १२ प्रकार का अवग्रह होता है। इसी प्रकार ईहा, अवाय, और धारणा के भी १२-१२ प्रकार की है। अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के मिलाकर कुल ४८ भेद हो जाते हैं। इन प्रत्येक ४८ भेदों को स्पर्शनादि पाँच इन्द्रिय और मन के द्वारा गुणा करने पर मतिज्ञान के भेद प्रकट होते हैं।

ये बहु अवग्रहादि मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम के प्रकर्ष से उत्पन्न होते हैं। मतिज्ञानावरण क्षयोपशम के प्रकर्ष को छोड़कर अन्य श्रुतज्ञानादि के प्रकर्ष से नहीं होते। अतः ये मतिज्ञान के भेद हैं। उन बहु आदि में बहु सर्वश्रेष्ठ है अतः सर्वप्रथम बहु को ग्रहण किया है। इसी प्रकार बहुविध आदि में भी पूर्व पूर्व वाले ज्ञान आगे वाले ज्ञान से श्रेष्ठ हैं अतः पूर्व पूर्व वाले श्रेष्ठ होने से सूत्र में इनका क्रम ग्रहण किया है क्योंकि जो श्रेष्ठ होता है, उसका ग्रहण पूर्व में होता है।

विसेसो - बहु-आदीओ पयत्था संति। ताणं गहणं अवग्गहादीओ णाणेण हवंति- यदोहि खायोवसमिग-णाणीणं णाणं कमेण हवंति। अतो पुव्वसुत्ते अवग्गहादीणं कहणं करीअ। सव्वपढमं अवग्गहो होदि, अवग्गहणाणं समत्थसाली ण हवइ, तत्तो वत्थूए णिण्णओ ण हवइ, तास णिण्णआय जा चेट्ठा हवइ, सा ईहा। तेण णिण्णओ हवइ, सो अवायो अत्थि, तस्स य णिण्णअस्स अविसुमरणं धारणा वट्ठइ। एते चदुणाणाइँ णेयस्स हवंति, ते णेयपयत्था संति। तस्स पयत्थस्स बहु-आदीओ भेदाओ संति। बहुआदीणं णाणं णाणावरणकम्मस्स खयोवसमेण हवइ। एते बहु-आदि-पयत्थाणं आसयं लेदूणं हवंति, अतो णाणस्स पि बहु-आदि भेदाइँ कहंति।

मइणाणस्स विसेसदाओ - १.मइणाणं दंसणपुव्वगं एव हवइ।

२. तं मइणाणं इंदियमणेहिं उप्पज्जइ।

३. मइसुदणाणाणं पवित्ति किंचि पज्जायेहिं जुत्तो सव्वदव्वेसु हवंति।

४. खायोवसमिगे सदि पि मइणाणेण अणंत-अत्थाणं जाणणं संभवो अत्थि।

विशेष- बहु आदि पदार्थ हैं। उनका ग्रहण अवग्रह आदि ज्ञान के द्वारा होता है- क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञानियों का ज्ञान क्रमशः होता है। अतः पूर्व सूत्र में अवग्रह आदि का कथन किया है। सर्व प्रथम अवग्रह होता है, अवग्रहज्ञान कमजोर है, उससे वस्तु का निर्णय नहीं होता है, उस निर्णय के लिये जो चेष्टा होती है वह ईहा है, उससे निर्णय होता है वह अवाय है और उस निर्णय का अविस्मरण धारणा है। ये चारों ज्ञान ज्ञेय के होते हैं, वह ज्ञेय पदार्थ हैं। उस पदार्थ के बहु आदि भेद हैं। बहु आदि का ज्ञान, ज्ञानावरण कर्मों के क्षयोपशम से होता है। ये बहु आदि पदार्थों का आश्रय लेकर होते हैं अतः ज्ञान के भी बहु आदि भेद कहे जाते हैं।

मतिज्ञान की विशेषतायें-

१.मतिज्ञान दर्शनपूर्वक ही होता है। **पं.का./ता.वृ./प्रक्षेपकगाथा/४३-१/८५**

२. वह मतिज्ञान इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होता है।**(त.सू.१/१४)**

३. मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है। **त.सू./१/२६**

४. क्षायोपशमिक होने पर भी मतिज्ञान द्वारा अनंत अर्थों का जाना सम्भव है।

५. दव्वदिट्ठीए मइणाणी सव्वदव्वाणं किंचि पज्जाया उवदेसेण जाणदि। एतेण पयारेण उवदेसेण सो सव्वखेत्तं अहवा पडिएक्कं इंदियस्स पडिणियदं खेत्तं जाणिदुं सक्कइ। सव्वकालं सव्व-ओदारिगादिभावा य जाणिदुं सक्कंति।

६. णिव्विकारसुद्धप्पणो अणुभूदीए अहिमुहं जं मइणाणं अत्थि, तं एव उवादेयभूदो अणंतसुखस्स साहगस्स सत्तस्स कारणेण णिच्चयेण उवादेयो अत्थि। ववहारेण य तस्स णाणस्स साहगो जं बहिरंगणाणं अत्थि, सो पि उवादेयो अत्थि।

७. छहदव्वेसु मुत्तदव्वं एव विसयं करेइ। तम्मि पि थूलम्मि पवित्तिं करेइ, सुहुमे ण। थूले पि कोवि एव पवित्तं हवइ, सव्वम्मि ण। तम्मि पि इंदियगाहम्मि एव पवित्तं हवइ, इंदिय-अग्गाहे ण। तम्मि वट्टमाणकालसंबंधीं उग्गहइ, भूदं भविस्सं य ण। तम्मि पि इंदिय-सण्णिकस्सं पावपयत्थं विसयं करेइ, अण्णं दु ण। तम्मि भवग्गह-ईहा-आदीणं कमेण पवित्तं करेंति। इत्तियं एव ण, अपिदु मइणाणावरणस्स वीज्जांतरायस्स खयोवसमं इंदियाणं पुण्णदा, पकास-उवओगादिसव्वकारणाणं सदि एव हवंति, हीणकारणेसु ण।

---

५. द्रव्य की दृष्टि से मतिज्ञानी सभी द्रव्यों की कुछ पर्यायों को उपदेश से जानता है। इसी प्रकार उपदेश द्वारा वह सभी क्षेत्र को अथवा प्रत्येक इन्द्रिय के प्रतिनियत क्षेत्र को जान सकता है। सर्वकाल को व सर्व औदारिकादि भावों को जान सकता है। **रा.वा./१/१९/९/७०/२**

६. निर्विकार शुद्धात्मा की अनुभूति के अभिमुख जो मतिज्ञान है, वही उपादेयभूत अनंत सुख का साधक होने के कारण निश्चय से उपादेय है। और व्यवहार से उस ज्ञान का साधक जो बहिरंग ज्ञान है वह भी उपादेय है। पं.का./ता.वृ./४३/८६/५

७. छहों द्रव्यों में मूर्त द्रव्य को ही विषय करता है उसमें भी स्थूल में प्रवृत्ति करता है सूक्ष्म में नहीं। स्थूलों में भी किन्हीं में ही प्रवृत्त होता है सबमें नहीं। उनमें भी इन्द्रियग्राह्य में ही प्रवृत्त होता है इन्द्रिय अग्राह्य में नहीं। उनमें वर्तमानकाल संबंधी को ग्रहण करता है, भूत भविष्यत् को नहीं। उनमें भी इन्द्रिय सन्निकर्ष को प्राप्त पदार्थ को विषय करता है, अन्य को नहीं। उनमें भवग्रह ईहा आदि के क्रम से प्रवृत्ति करता है। इतना ही नहीं बल्कि मतिज्ञानावरण व वीर्यान्तराय का क्षयोपशम इन्द्रियों की पूर्णता, प्रकाश व उपयोग आदि समस्त कारणोंके होने पर ही होता है, हीन कारणों में नहीं।

एते सव्वकारणाणं सदि पि उवरि-उवरि अहिगं-अहिगं सुद्धीए सदि कदाचि हवइ, सदा ण। तं कहणमत्तं णाणं अत्थि। इंदियणाणं वाकुलदादि-अणेगदोसाणं ठाणं अत्थि, परंतु तं पदेसचलणात्तगो पि हवइ। जइ पि पाइयवेइया सव्वपयारस्स णाणं '**णाण**' कहंति, परंतु समीचीणरुवेण जाव तं णाणं इंदियाहीणं हवइ, ताव तं विकिदं एव अत्थि।

२. कुमइणाणस्स लक्खणं -

विसजंतकूडपंजरबंधादिसु अणुवेदसकरणेण।
जा खलु पवत्तइ मई मइअण्णाण त्ति णं विंति।

परोवदेसेण विणा जो विसं, जंतं, कूडं, पंजरं, बंधं य आदीणं विसये बुद्धि गच्छइ, तं णाणीजणा कुमइणाणं इदि कहइ।

मिथ्यादर्शनादयसहचरिमाभिनिबोधिकज्ञानमेव कुमतिज्ञानम्।

मिच्छादंसणस्स उदयेण सह आहिणिबोहिगणाणं एव कुमइणाणं अत्थि।

३. सुदणाणं - इंदियेहिं विवक्खियं पयत्थस्स उग्गहिदूणं तेण सह संबंधिदो

इस सर्व कारणों के होने पर भी ऊपर-ऊपर अधिक-अधिक शुद्धि होने से कदाचित् होता है सर्वदा नहीं। इसलिये वह कहने मात्र को ही ज्ञान है। इन्द्रिय ज्ञान व्याकुलता आदि अनेक दोषों का तो स्थान है ही, परन्तु वह प्रदेशचलनात्मक भी होता है। यद्यपि प्राकृत या वैकृत सभी प्रकार के ज्ञान 'ज्ञान' कहलाते हैं परन्तु वास्तव में जब तक वह ज्ञान इन्द्रियाधीन होता है, तब तक वह विकृत ही है। **पं.ध./उ./२८६-२८९,३०५,९५३**

कुमतिज्ञान का लक्षण-

विसजंतकूडपंजरबंधादिसु अणुवेदसकरणेण।
जा खलु पवत्तइ मई मइअण्णाण त्ति णं विंति।पं.सं./प्रा./१/११८

परोपदेश के बिना जो विष, यन्त्र,, कूट, पंजर तथा बंध आदि के विषय में बुद्धि प्रवृत्त होती है उसे ज्ञानीजन कुमतिज्ञान कहते हैं।

मिथ्यादर्शनादयसहचरिमाभिनिबोधिकज्ञानमेव कुमतिज्ञानम्।

पंचास्तिकाय/त.प्र./४१

मिथ्यादर्शन के उदय के साथ आभिनिबोधिकज्ञान ही कुमतिज्ञान है।

श्रुतज्ञान- इन्द्रियों द्वारा विवक्षित पदार्थ का ग्रहण करके उससे सम्बन्धित अन्य

अण्णपयत्थं जाणणं, सुदणाणं अत्थि।

तं दोपयारस्स होदि- अत्थलिंगजं सद्दलिंगजं य। पयत्थं जाणिदूणं तम्मि इट्ठदा-अणिट्ठदाणं णाणं अहवा धूमं णिरक्खिदूण अग्गीए णाणं अत्थलिंगजं सुदणाणं अत्थि। वायगसद्दं सुणिदूणं पढिऊणं वा वाच्चस्स णाणं सद्दलिंगजं अत्थि। तं लोगिगं पि हवइ, लोकोत्तरं पि। लोकोत्तर-सुदणाणं बारसांगाइँ, चउदस-पुव्वाइँ आदिरुवेण अणेगपयारस्स संति। पढमं अत्थलिंगजं दु छुद्दजीवत्तो कमेण विद्धिगदिआ रिद्धिधारी मुणिपज्जत्तं हवंति। परंतु बीअं अत्थलिंगजं सद्दलिंगजं य सण्णी पंचेंदियजीवा एव संभवो अत्थि। सुदकेवलीं इदं उक्किट्ठं हवइ।

सुदणाणस्स विउपत्ति अत्थो य - श्रूयते अनेन तत् शृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम्। श्रुतशब्दोऽयं श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढ़िवशात् कस्मिंश्चिज्ज्ञानविशेषे वर्तते। यथा कुशलवनकर्म प्रतीत्य व्युत्पादितोऽपि कुशलशब्दो रूढ़िवशत्पर्ययवदाते वर्तते। श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। विशेषेण तर्कणमूहनं वितर्कः श्रुतज्ञानमित्यर्थः।

पदार्थ को जानना श्रुतज्ञान है। वह दो प्रकार का है- अर्थलिंगज एवं शब्दलिंगज। पदार्थ को जानकर उसमें इष्टता अनिष्टता का ज्ञान अथवा धूम को देखकर अग्नि का ज्ञान अर्थलिंगज श्रुतज्ञान है। वाचक शब्द को सुनकर या पढ़कर वाच्य का ज्ञान शब्दलिंगज है। वह लौकिक भी होता है लोकोत्तर भी। लोकोत्तर श्रुतज्ञान १२ अंग, १४ पूर्वों आदि रूप से अनेक प्रकार का है। पहल अर्थलिंगज तो श्रुद्र जीवों से लेकर क्रम से वृद्धिंगत होता हुआ ऋद्धिधारी मुनियों तक को होता है। पर दूसरा अर्थलिंगज व शब्दलिंगज संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को ही सम्भव है। श्रुतकेवली को यह उत्कृष्ट होता है।

श्रुतज्ञान का व्युत्पत्त्यर्थ-

श्रूयते अनेन तत् शृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम्। श्रुतशब्दोऽयं श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढ़िवशात् कस्मिंश्चिज्ज्ञानविशेषे वर्तते। यथा कुशलवनकर्म प्रतीत्य व्युत्पादितोऽपि कुशलशब्दो रूढ़िवशत्पर्ययवदाते वर्तते। श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। विशेषेण तर्कणमूहनं वितर्कः श्रुतज्ञानमित्यर्थः।

स.सि./अ./सू./पू./पं./१/९/९४/१, १/२०/१२०/४, २/२१/१७९/७, ९/४३/४५५/६

पयत्थो जेण सुणिदा, सणइ, सवणमत्तं तं सुदं अत्थि। अयं सुदसद्दो सवणरुवत्थस्स पमुहदाए णिप्पादिअं अत्थि, ता पि रूढीए तस्स वाच्चं कोवि णाणं विसेसो अत्थि। जहा- कुसलसद्दस्स विउपत्ति अत्थो कुसाए छेदणं अत्थि, ता पि रूढीए तस्स अत्थो पज्जवदत्तो, तत्तपरियं अत्थि विमलं मणोज्जं वा उग्गहइ। सुदणाणस्स विसयभूदो अत्थो सुदं अत्थि। विसेसरुवेण तक्कणा करणं ऊहा करणं वा वितक्कं वा सुदणाणं वा कहइ।

सुदणाणस्स विभिण्णायरिअसम्मदा लक्खणं -

१. सद्दसवणस्स पच्छा जो मणस्स एव पहाणदाए अत्थणाणं हवइ, तं सुदं अत्थि।

२. एगं घटं इंदियमणेहिं जाणिदूणं तज्जादीय विभिण्ण-देसकालवत्ती घटाणं संबंध-जादि-आदीणं जं वियारं होदि, तं सुदं अत्थि।

३. सुदणाणं इंदियमणेहिं एगं जीवं जाणिदूणं तस्स संबंधस्स सद-संखादि-अणुयोगेहिं णाणापयारेण परुवणं करणे जो समत्थो होदि, तं सुदणाणं वट्टइ।

४. जम्मि णाणम्मि मइणाणं कारणं होदि, जो मइणाणेण उग्गहित्ता पयत्थं छुडुिऊणं

पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, सुनता है या सुनना मात्र वह श्रुत है। यह श्रुत शब्द सुनने रूप अर्थ की मुख्यता से निष्पादित है तो भी रूढ़ि से उसका वाच्य कोई ज्ञान विशेष है। जैसे- कुशल शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ कुशा का छेदना है तो भी रूढ़ि से उसका अर्थ पर्यवदात् अर्थात् विमल या मनोज्ञ लिया जाता है। श्रुतज्ञान विषयभूत अर्थ श्रुत है। विशेष रूप से तर्कणा करना अर्थात् ऊहा करना वितर्क अर्थात् श्रुतज्ञान कहलाता है।

श्रुतज्ञान के विभिन्न आचार्यों सम्मत लक्षण-

१. शब्द सुनने के बाद जो मन की ही प्रधानता से अर्थ ज्ञान होता है वह श्रुत है। **रा.वा./१/९/२७,२९/पृ./पं.**

२. एक घड़े को इन्द्रिय और मन से जानकर तज्जातीय विभिन्न देशकालवर्ती घटों के सम्बंध जाति आदि का जो विचार होता है वह श्रुत है। रा.वा./१/९/२७,२९

३. श्रुतज्ञान इंद्रिय और मन के द्वारा एक जीव को जानकर उसके संबंध के सत् संख्या आदि अनुयोगों के द्वारा नाना प्रकार से प्ररूपण करने में जो समर्थ होता है वह श्रुतज्ञान है। **रा.वा./१/९/२७,२९/पृ./पं.**

४. जिस ज्ञान में मतिज्ञान कारण पड़ता है जो मतिज्ञान से ग्रहण किये गये पदार्थ

तं संबंधिदो परपयत्थे वापारं करदि, सुदणाणावरणकम्मस्स य खयोवसमेण उप्पज्जइ, तं सुदणाणं कहइ।

५. जं सुणावणदि, तं सद्दो कहइ। सद्देण उप्पण्णणाणं सुदणाणं भणदि। एतम्मि अत्थम्मि अत्थात्तगं सुदणाणं एव पहाणं हवीअ, अहवा सुदं इत्थं रूढिसद्दो अत्थि।

६. सुदणाणावरणकम्म खयोवसमे सदि णाणापयत्थाणं समीचीणसरुवस्स णिच्चयागो असपट्ठणाणं सुदं भणदि।

७. सव्वं पि अणेयतं परोक्ख-रूवेण जं पयासेदि।
तं सुयणाणं भण्णदि ससयपहुदीहि परिचत्तं।।

जो परोक्खरूवेण सव्ववत्थूओ अणेकांतरुवेण पगटदि, संसयो, विवरीओ य आदीहिं रहिदं तं णाणं सुदणाणं भणदि

सुदणाणस्स भेया - सुदणाणस्स अक्खरात्तगो अणक्खरात्तगो य दोभेया।

१. अक्खरात्तगो - वायगसद्दो परेण वाच्चत्थस्स गहणं अक्खरात्तगं सुदं अत्थि।

को छोड़कर तत्संबंधित दूसरे पदार्थ में व्यापार करता है, और श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। ध./१/१,१,२/९३/५

५. जो सुना जाता है उसको शब्द कहते हैं, शब्द से उत्पन्न ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। इस अर्थ में अर्थात्मक श्रुतज्ञान ही प्रधान हुआ, अथवा श्रुत ऐसा रूढ़ि शब्द है। गो.जी./जी.प्र./३१५/६७३,१६

६. श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर नाना पदार्थों के समीचीन स्वरूप का निश्चय कर सकने वाले अस्पष्ट ज्ञान को श्रुत कहते हैं। अन.ध./३/५

७. सव्वं पि अणेयतं परोक्ख-रूवेण जं पयासेदि।
तं सुयणाणं भण्णदि ससयपहुदीहि परिचत्तं।। का.अ./मू./२६२
जो परोक्ष रूप से सब वस्तुओं को अनेकान्त रूप दर्शाता है, संशय, विपर्यय आदि से रहित उस ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।

श्रुतज्ञान के भेद- श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक और अनरात्मक के भेद से दो प्रकार है।

अक्षरात्मक- वाचक शब्द पर से वाच्यार्थ का ग्रहण अक्षरात्मक श्रुत है।

२. अणक्खरात्तगो – सीतादिफासे इट्ठाणिट्ठाणं हवइ, अणक्खरात्तगं सुदं अत्थि। सुदणाणं सद्दलिंगजं अत्थलिंगजं दोपयारस्स।

१. सद्दलिंगजं सुदणाणं – सद्दलिंगजं सद्दणाणं दोपयारस्स।

१. लोगिगसद्दलिंगजं– सामाण्णपुरिसस्स मुहेण णिस्सिदं वयणं समुदायेण जं णाणं उप्पज्जइ, तं लोगिगसद्दलिंगजं सुदणाणं अत्थि।

२. लोकोत्तरसद्दलिंगजं – असच्चवयणाणं कारणेहिं रहिदं पुरिसस्स मुहेण णिस्सिदं समुदायेण जं सुदणाणं उप्पज्जदि, तं लोकोत्तरसद्दलिंगजं सुदणाणं अत्थि।

लोकोत्तरसद्दलिंगजस्स भेयो –

श्रुतं द्व्यनेकद्वादशभेदम्।।

सुदणाणस्स दो, बारस अणेगभेया यु संति।

श्रुतज्ञान के दो भेद– अङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टिमिति।

अंगबाहिर अंगपविट्ठं वा।

१. अंगं – अंगसुदं इदं गुणणाम अत्थि, यदोहि, जो त्तिकालस्स सव्वदव्वाइँ

अनक्षरात्मक– शीतादि स्पर्श में इष्टानिष्ट का होना अनक्षरात्मक श्रुत है।

गो.जी./जी.प्र./३१६/६७६/३

श्रुतज्ञान शब्दलिंगज और अर्थलिंगज के भेद से दो प्रकार का है।

शब्दलिंगज श्रुतज्ञान– शब्दलिंगज शब्दज्ञान दो प्रकार से है–

लौकिक शब्दलिंगज– सामान्य पुरुष के मुख से निकल हुये वचन समुदाय से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह लौकिक शब्दलिंगज श्रुतज्ञान है।

लोकोत्तर शब्दलिंगज– असत्य बोलने के कारणों से रहित पुरुष्ा के मुख से निकले हुये वचन समुदाय से जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है वह लोकोत्तर शब्द लिंगज श्रुतज्ञान है।

लोकोत्तर शब्दलिंगज के भेद–

श्रुतं द्व्यनेकद्वादशभेदम्।। त.सू./१/२०

श्रुतज्ञान के दो, बारह और अनेक भेद है।

दो भेद– अङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टिमिति। स.सि./१/२०/१२३/२

अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट।

अंग– अंगश्रुत यह गुणनाम है, क्योंकि, जो तीनों काल की समस्त द्रव्य वा

पज्जायाइँ अंगदि पावइ वा वात्तिदि वा तं अंगं अत्थि।
अहवा मज्झमपदेहिं जो लिखइ, तं अंगं कहइ। अहवा सव्वसुदस्स एगं-एगं आचारादिरुवं अवयवांगं कहइ। इत्थं अंगसद्दस्स णिरुत्ति अत्थि।
१. अंगपविट्ठं - आचारांगादि बारसपयारस्स णाणं अंगपविट्ठं कहइ।
२. अंगबाहिर - गणहरदेवस्स सिस्स-पसिस्सेहिं अल्पायु-बुद्धि-बलधारग-जीवाणं अणुग्गहाय अंगाणं आधारेण रचिदं सक्खित्तगंथो अंगबाहिर अत्थि।
अंगपविट्ठस्स भेयो - अंगपविट्ठस्स बारसभेया संति -
(१) आचारांगं, (२) सुत्तकिदांगं, (३) ठाणांगं, (४) समवायांगं, (५) वाखयापण्णत्ति अंगं, (६) णाहधम्मकहांगं, (७) उवासगाज्झवयणांगं, (८) अंतकिददसांगं, (९) अणुत्तरोवपादिगदसा, (१०) पसिणवाकरणांगं, (११) विपायसुत्तं, (१२) दिट्ठिवादं य।
१. आचारांगं - चरियाए विहाणं, अट्ठसुद्धीओ, पंचसमीदीओ, त्तिगुत्तीओ य इदि आदिरुवेण वण्णंति।

पर्यायों को अङ्गति अर्थात् प्राप्त होता है, या व्याप्त होता है वह अंग है।
ध.९/४,१,४५/१९६/९
अथवा मध्यम पदों के द्वारा जो लिखा जाता है वह अंग कहलाता है। अथवा समस्त श्रुत के एक-एक आचारादि रूप अवयव अंग कहते हैं। ऐसे अंग शब्द की निरुक्ति है।
अंगप्रविष्ट- आचारांग आदि १२ प्रकार का ज्ञान अंगप्रविष्ट कहलाता है।
अंगबाह्य- गणधर देव के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा अल्पायु-बुद्धि बलवाले प्राणियों के अनुग्रह के लिये अंगों के आधार से रचे गये संक्षिप्त ग्रन्थ अंगबाह्य है।
अंगप्रविष्ट के भेद- अंगप्रविष्ट के बारह भेद है-
(१) आचारांग, (२) सूत्रकृतांग, (३) स्थानांग, (४) समवायांग (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग, (६) ज्ञातृधर्मकथांग, (७) उपासकाध्ययनांग, (८) अन्तकृद्दशांग, (९) अनुत्तरोपपादिकदश, (१०) प्रश्नव्याकरणांग, (११) विपाकसूत्र और (१२) दृष्टिवाद। **स.सि./१/२०/१२३/३**
आचारांग- चर्या का विधान, आठ शुद्धि, पाँच समिति, तीन गुप्ति आदि रूप से वर्णित होती है।

२. सुत्तकिदांगं – णाणं विणयं, किं कल्पं? किं अकल्पं? छेदोट्ठापणादीओ, ववहारधम्मस्स किरियाणं णिरूवणं संति।

३. ठाणांगं – एगं-एगं दो-दो आदीणं रुवेण अत्थाणं वण्णं संति।

४. समवायांगं – सव्वाणं पयत्थाणं समाणदारुवेण समवायस्स वियारं करीअ। जहा- धम्म-अधम्म-लोकाकास-एगजीवाणं तुल्लं असंखादपदेसाणं सदि एतस्स दव्वरुवेण समवायं भणदि। (एतेण पयारेण जहाजोग्गं खेत्तकालभावाणं समवायं जाणणं।)

५. वाखयापण्णत्ति – जीवमत्थि ण वा, आदीओ ६० सहस्स पसिणाणं उत्तरमत्थि।

६. णाहधम्मकहा – अणेग-आखाण-उपाखाणाणं णिरुवणं अत्थि।

७. उवासगाज्झवयणं – सावगधम्मस्स विसेसविवेयणं अत्थि।

८. अंतकिददसांगं – पडिक्क तिथ्ययरस्स समयम्मि जो जो दस-दस अंतकिदकेवलीओ हवीअ, जे कठिण-उवसग्गाणं सहिऊणं मुत्तिं पावीअ।

९. अणुत्तरोवपादिगदसा – पडिक्क तिथ्ययरस्स समयम्मि जो दस-दस मुणीणं वण्णं अत्थि, जे दारुण-उवसग्गाणं सहिदूणं पंचाणुत्तरविमाणेसु जम्म पावीअ।

सूत्रकृतांग- ज्ञान-विनय, क्या कल्प्य है? क्या अकल्प्य है? छेदोपस्थापनादि, व्यवहारधर्म की क्रियाओं का निरूपण है।

स्थानांग- एक-एक दो-दो आदि के रूप से अर्थों का वर्णन है।

समवायांग- सब पदार्थों की समानता रूप से समवाय का विचार किया गया है। जैसे धर्म-अधर्म लोकाकाश और एक जीव के तुल्य असंख्यात प्रदेश होने से इनका द्रव्यरूप से समवाय कहा जाता है। (इसी प्रकार से यथायोग्य क्षेत्र, काल, भाव का समवाय जानना)

व्याख्याप्रज्ञप्ति- जीव है कि नहीं, आदि साठ हजार प्रश्नों के उत्तर है।

ज्ञातृधर्म कथा- अनेक आख्यान और उपाख्यानों का निरूपण है।

उपासकाध्ययन- श्रावकधर्म का विशेष विवेचन है।

अन्तकृद्दशा- प्रत्येक तीर्थंकर के समय में होने वाले उन दश-दश अन्तकृत् केवलियों का वर्णन है जिनने भयंकर उपसर्गों को सहकर मुक्ति प्राप्त की।

अनुत्तरोपपादिकदशा- प्रत्येक तीर्थंकर के समय में होने वाले उन दश-दश मुनियों का वर्णन है जिनने दारुण उपसर्गों को सहकर पाँच अनुत्तर विमानों में

१०. पिसण-वाकारणं - युत्तिणयेहिं अणेगाक्खेपविक्खेपरुवाइँ पसिणाणं उत्तरं पदासी।

११. विपाअसुत्तं - पुण्णस्स पावस्स विपाअस्स वियारं अत्थि।

१२. दिट्ठिवादं - एतम्मि ३६३ मदाणं णिरुवणपुव्वगं खण्डणं अत्थि।

दिट्ठिवादस्स पंचभेया - (१) परिकम्मं, सुत्तं, पढमाणुओगं, पुव्वगदं, चूलिआ य।

१. परिकम्मं - परिकम्मस्स पंचभेयाइँ संति -

१. चंद्दपण्णत्ति - चंद्दस्स आयुणो, परिवारस्स, रिद्धीए, गईए, बिम्बस्स य अवगाहणा आदीणं वण्णंति।

२. सूरयपण्णत्ति - सूरयस्स आयुणो, भोगस्स, उवभोगस्स, परिवारस्स, रिद्धीए, गईए, बिम्बस्स य अवगाहणा आदीणं वण्णंति।

३. जम्बूद्वीपपण्णत्ति - जम्बूद्वीपत्थ-भोयभूमि-कम्मभूमीसु उप्पण्णं णाणा पयारस्स णरा अण्णतिरियादीणं पव्वदं, णदी आदीणं वण्णंति।

जन्म लिया।

प्रश्न व्याकरण- युक्ति और नयों के द्वारा अनेक आक्षेप और विक्षेप रूप प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

विपाकसूत्र- पुण्य और पाप के विपाक का विचार है।

दृष्टिवाद- इसमें ३६३ मतों के निरूपण पूर्वक खण्डन है।

रा.वा./१/२०/१२/-७२/२८से७४/९ तक

दृष्टिवाद के पाँच भेद- (१) परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

स.सि./१/२०/१२३/५

परिकर्म- परिकर्म के पाँच भेद है-

१. चन्द्र प्रज्ञप्ति- चन्द्रमा की आयु, परिवार, ऋद्धि, गति और बिम्ब की ऊँचाई आदि का वर्णन करता है।

२. सूर्य प्रज्ञप्ति- सूर्य की आयु, भोग, उपभोग, परिवार, ऋद्धि, गति बिम्ब की ऊँचाई आदि का वर्णन करता है।

३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति- जम्बूद्वीपस्थ भोगभूमि और कर्मभूमि में उत्पन्न हुये नाना प्रकार के मनुष्य तथा दूसरे तिर्यंच आदि का पर्वत, द्रह, नदी आदि का वर्णन

४. द्वीपसायरपण्णत्ति – द्वीपसायराणं पमाणस्स द्वीपसायरस्स य अंतरभूदं णाणापयारस्स अण्णपयत्थाणं वण्णंति।

५. वक्खापण्णत्ति – पुग्गलो, धम्मो, अधम्मो, आकासं, कालो, भव्वसिद्धो, अभव्वसिद्धो य एताणं जीवाणं वण्णंति।

२. सूत्तं – जीवो अबंधगो एव अत्थि, अवलेपगो एव अत्थि, अकत्ता एव अत्थि, अभोत्ता एव अत्थि, इच्चेवादिरुवेण ३६३ मदाणं पुव्वपक्खरुवेण वण्णंति।

३. पढमाणुओगो – पुराणाणं वण्णंति।

पुव्वगदस्स चउदसभेया– उप्पादपुव्वं, अग्गायणीयं, वीरियाणुवादं, अत्थिणत्थि पवादं, णाणपवादं, सच्चपवादं, अप्पपवादं, कम्मपवादं, पडिक्खाणणामधेयं, विज्जाणुवादं, कल्लाणणामधेयं, पाणावायो, किरियाविसालं, लोकबिंदुसारो।

१. उप्पादपुव्वं – जीवपोग्गलाणं जत्थ जदो जहा उप्पज्जइ, सव्वेसिं वण्णं संति।

२. अग्गायणीपुव्वं – किरियावादादीओ पकिरिया ससमयस्स य विसयो विवेचिदं

करता है।

४. द्वीपसागर प्रज्ञप्ति– द्वीप और समुद्रों के प्रमाण का तथा द्वीपसागर के अन्तर्भूत नाना प्रकार के दूसरे पदार्थों का वर्णन करता है।

५. व्याख्या प्रज्ञप्ति– पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीव इन सबका वर्णन करता है।

सूत्र– जीव अबन्धक ही है, अवलेपक ही है, अकर्ता ही है, अभोक्ता ही है, इत्यादि रूप से ३६३ मतों का पूर्वपक्ष रूप से वर्णन करता है। ध./१/१,१,२/१०९–१११/४

प्रथमानुयोग– पुराणों का वर्णन करता है।

पूर्वगत के १४ भेद– उत्पादपर्व, अग्रायणीय, वीर्यानुवाद, अस्तिनास्ति प्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्याननामधेय, विद्यानुवाद, कल्याणनामधेय, प्राणावाय, क्रियाविशाल, और लोकबिन्दुसार। स.सि./१/२०/१२६/६

१. उत्पादपूर्व– जीव पुद्गलादि का जहाँ जब जैसा उत्पाद होता है उस सबका वर्णन है।

२. अग्रायणी पूर्व– क्रियावाद आदि की प्रक्रिया और स्वसमय का विषय

अत्थि। अग्गायणीपुव्वस्स पंचभेया- आणुपुव्वी, णाम, पमाणं, वक्खाणदा, अत्थाहियारो य।

३. वीरियपवादं- छदुमत्थाणं केवलीणं सत्तीए, सुरेण्द्स्स, असुरेण्द्स्स य आदीणं रिद्धीणं, णरेंद्राणं चक्कवत्तीणं, बलदेवाणं आदीणं सामत्थ दव्वाणं लक्खणादीणं णिरुवणं अत्थि।

४. अत्थिणत्थिपवादं - पंचात्थिकायाणं णयाणं अत्थि-णत्थि आदि अणेगपज्जायेहिं विवेयणं अत्थि।

५. णाणं पवादं - पंचणाणाणं इंदियाणं य विभागादीणं णिरुवणं अत्थि।

६. सच्चपवादं - वयणगुत्ति, वयणसंसआरस्स कारणं, वयणपयोगो बारसपयाराणं भासाओ, दसपयारस्स सच्चं, वत्ताए पयारं आदीणं वित्थारेण वण्णणं अत्थि।

७. अप्प-पवादं - अप्पदव्वस्स छहजीवणिकायाणं य अत्थि-णत्थि आदी विविहभंगेहिं णिरुवणं अत्थि।

८. कम्मपवादं - कम्माणं बंधोदयं, उवसमादिदसाणं ठिदि-आदीणं य वण्णणं अत्थि।

विवेचित है।अग्रायणी पूर्व के पाँच भेद- आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, अर्थाधिकार।

वीर्यप्रवाद- छद्मस्थ और केवली की शक्ति, सुरेन्द्र, असुरेन्द्र आदि की ऋद्धियाँ, नरेन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव आदि की सामर्थ्य द्रव्यों का लक्षण आदि का निरूपण है।

अस्तिनास्तिवाद- पाँचों अस्तिकायों का और नयों का अस्ति-नास्ति आदि अनेक पर्यायों द्वारा विवेचन है।

ज्ञानप्रवाद- पाँचों ज्ञानों औश्र इन्द्रियों का विभाग आदि निरूपण है।

सत्यप्रवाद- वाग्गुप्ति, वचन संस्कार के कारण, वचन प्रयोग बारह प्रकार की भाषायें, दस प्रकार के सत्य, वक्ता के प्रकार आदि का विस्तार से वर्णन है।

आत्मप्रवाद- आत्मद्रव्य का और छह जीव निकायों का अस्ति-नास्ति आदि विविध भंगों से निरूपण है।

कर्मप्रवाद- कर्मों की बंध उदय, उपशम आदि दशाओं का और स्थिति आदि का वर्णन है।

९. पच्चक्खाण पवादं – वय–णियमाणं, पडिक्कमणं, तवं, आराहणा आदीओ मुणित्ते कारणं दव्वाणं चागं आदीणं विवेयणं अत्थि।

१०. विज्जाणुवादं – सव्वविज्जाओ अट्ठमहाणिमित्तं, रज्जूरासिविहं, खेत्तं, सेणी, लोकपइट्ठा, समुदघादो आदीणं विवेयणं अत्थि।

११. कल्लाणपवादं – सूरिय–चंद्द–गिह–णक्खत्त–तारागणाणं चदुखेत्तं, उवपाददुाणं, गइ, वक्कगइ, ताणं फलाणं य पक्खीणं सद्दाणं, अरिहंताणं (तिथ्ययर–बलदेव–वासुदेव–चक्कवत्ती–आदीणं) गब्भावतारादीओ महाकल्लाणकाणं वण्णणं अत्थि।

१२. पाणावायो – सरीरचिकित्सादीओ अट्ठांगाइँ, आयुरवेदं, भूदिकम्मं, जांगुलिकक्कम्मं (विसविज्जा), पाणायामं य इच्चेवादीणं भेयपभेयाणं वित्थारेण वण्णणं अत्थि।

१३. किरियाविज्जाणं – लेहणकलादि–बहत्तरकलाणं,
इत्थीसंबंधीचोसठगुणाणं, सिल्पकलाणं, काव्वसंबंधीगुणदोसविहीणं,
छंदणिम्माणंकलाणं य वण्णणं अत्थि।

प्रत्याख्यान प्रवाद– व्रत–नियम, प्रतिक्रमण, तप, आराधना आदि तथा मुनित्व में कारण द्रव्यों के त्याग आदि का विवेचन है।

विद्यानुवाद– समस्त विद्यायें आठ महा निमित्त, रज्जुराशिविध, क्षेत्र, श्रेणी, लोक प्रतिष्ठा, समुद्घात आदि का विवेचन है।

कल्याणवाद– सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारागणों के चार क्षेत्र, उपपादस्थान, गति, वक्रगति तथा उनके फलों का, पक्षी के शब्दों का और अरिहंत अर्थात् तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदि के गर्भावतार आदि महाकल्याणकों का वर्णन है।

प्राणावाय– शरीर चिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म, जांगुलिकक्रम (विषविद्या) और प्राणायाम के भेद–प्रभेदों का विस्तार से वर्णन है।

क्रिया विज्ञान– लेखन कला आदि बहत्तर कलाओं का, स्त्री संबंधी चौसठ गुणों का, शिल्पकला का, काव्य संबंधी गुण–दोष विधि का और छंद निर्माण कला का वर्णन है।

१४. लोकबिंदुसारो - अट्ठववहारस्स, चउबीजस्स, रासिपरिकम्मस्स य आदीणं गणिदं सव्वसुदसम्पत्तीणं य वण्णणं अत्थि।

४. चूलिआए पंचभेया - जलगदा थलगदा आकासगदा रुवगदा मायागदा य।

१. जलगदा- जले गमणं, जलथंबणस्स कारणं भूदमंत्त-तंत्ताइँ, तवच्चरियारुवं अइसयादीणं वण्णइ।

२. थलगदा- भूमीए अंतरो गमणस्स कारणभूदमंत्त-तंत्ताणं, तवच्चरणे चकिदादीणं वत्थुविज्जा य भूमिसंबंधी अण्णसुहासुहकारणाणं वण्णइ।

३. मायागदा- इंदजालादीणं कारणभूदमंत्त-तवच्चरणाणं वण्णइ।

४. रुवगदा - सिंह-घुड्डु-हरिणादीणं सरुवस्स आयाररुवेण परिणमणस्स कारणभूदो मंत्त-तंत्ताणं, तवच्चरणस्स, चित्त-कट्ठ-लेप्प-लेणकम्मादीणं लक्खणस्स वण्णइ।

५. आकासगदा - आकासे गमणस्स कारणभूदो मंत्त-तंत्ताणं तवच्चरणस्स वण्णइ।

लोकबिन्दुसार- आठ व्यवहार, चार बीज, राशि परिकर्म आदि गणित तथा समस्त श्रुत सम्पत्ति का वर्णन है। **रा.वा./१/२०/१२/-७४/११से ७८/२**

चूलिका के पाँच भेद- जलगता, स्थलगता, आकाशगता, रूपगता और मायागता। **ह.पु./१०/१२३**

१. जलगता- जल में गमन, जलस्तम्भन के कारण भूत मंत्र-तंत्र और तपश्चर्या रूप अतिशय आदि का वर्णन करती है।

२. स्थलगता- पृथिवी के भीतर गमन करने के कारणभूत मंत्र, तंत्र ओर तपश्चरण प आश्चर्य आदि का तथा वास्तु विद्या और भूमि संबंधी दूसरे शुभ-अशुभ कारणों का वर्णन करती है।

३. मायागता- इन्द्रजाल आदि के कारणभूत मंत्र और तपश्चरण का वर्णन करती है।

४. रूपगता- सिंह, घोडा और हरिण आदि के स्वरूप के आकार रूप से परिणमन करने के कारणभूत मंत्र-तंत्र और तपश्चरण तथा चित्र-काष्ठ-लेप्य-लेन कर्म आदि के लक्षण का वर्णन करती है।

५. आकाशगता- आकाश में गमन करने के कारणभूत मंत्र, तंत्र ओर तपश्चरण का वर्णन करती है।**ध./१/१,१,२/११३/२**

अंगबाहिरस्स भेयो – कालिअस्स, उक्कालिअस्स य भेयेण अगंबाहिर अणेगपयारस्स अत्थि।

१. कालिओ – सवाज्झायकालम्मि जस्स पठण–पाठणस्स णियमो अत्थि, सो कालिओ कहइ।

२. उक्कालिओ – यस्स पठण–पाठणाणं कोवि णियदं समयं णत्थि, सो उक्कालिओ अत्थि।

अंगबाहिरस्स भेयो–

१. सामायियं – अंगबाहिर समदाभावस्स विहाणं वण्णइ।

२. चउबीस थवं – चउबीसतिथ्ययराणं वंदणाकरणस्स विहि, तस्स णाम, संठाणं, उत्सेहो, पंचकल्लाणकं, चउतीस अइसयाणं सरुवं, तिथ्ययराणं वंदणाए सफलदाए वण्णइ।

३. वंदणा – एक्कजिणेण्द्देवसंबंधी तस्स एक्कजिणेण्द्देवस्स अवलंबणेण पडिक्कमणं, जिणालयसंबंधी वंदणाए वण्णइ। सत्तपयारस्स पडिक्कमणाणं वण्णइ।

४. वेणयिओ– पंचपयारस्स विणयाणं वण्णइ।

अंगबाह्य के भेद– कालिक, उत्कालिक के भेद से अंगबाह्य अनेक प्रकार के हैं।

कालिक– स्वाध्याय काल में जिनके पठन–पाठन का नियम है उन्हें कालिक कहते हैं।

उत्कालिक– जिनके पठन पाठन का कोई नियत समय न हो वे उत्कालिक हैं।

रा.वा./१/२०/१४/७८/६

अंगबाह्य के भेद–

सामायिक– अंगबाह्य समात भाव के विधान का वर्णन करता है।

चतुर्विंशति स्तव– चौबीस तीर्थंकरों की वंदना करने की विधि, उनके नाम, संस्थान, उत्सेध, पाँच महाकल्याणक, चौंतीस अतिशयों के स्वरूप और तीर्थंकरों की वंदना की सफलता का वर्णन करता है।

वंदना– एक जिनेन्द्र देव संबंधी और उन एक जिनेन्द्र देव के अवलम्बन से प्रतिक्रमण– जिनालय संबंधी वंदना का वर्णन करता है। सात प्रकार के प्रतिक्रमणों का वर्णन करता है।

वैनयिक– पाँच प्रकार की विनयों का वर्णन करता है।

५. किदिकम्मं - अरहंतसिद्धायरिअसाधूणं पूयाविहीणं वण्णइ।

६. दसवेकालिओ - दसवेकालिआए वण्णइ। मुणीणं आयारविहीए गोयरविहीए य पि वण्णइ।

७. उत्तराज्झवयणं - जम्मि अणेगपयारस्स उत्तराइँ पठणाय पावंति, तं उत्तराज्झवयणं भणदि। एतम्मि चउप्पयारस्स उवसग्गाइँ कहं सहणीयं? बाईसपयारस्स परिसहाणं सहणकरणस्स विहिं किं अत्थि? इच्छादीणं पसिणाणं उत्तराइँ वण्णीअ।

८. कल्प-ववहारो- साधूणं जोग्गं आचरणस्स, अजोग्गं य आचरणस्स सदि पायच्चिदविहीए वण्णंति।

९. कल्पाकल्पाइँ- दव्व-खेत्त-काल-भावाणं अपेक्खाए मुणीणं इदं जोग्गं, इदं य अजोग्गं वट्टंति, उत्तविसयस्स वण्णणं अत्थि।

१०. महाकल्पं - कालसंहणणाणं आसयिदूणं साधूणं जोग्गदव्वखेत्तादीणं वण्णंति।

११. पुण्डरीओ - भवणवासी-आदिचउप्पयाराणं देवेसु उप्पत्तीए कारणरुवं दाण-पूया-तवच्चरणादि-अणुट्ठाणाणं वण्णंति।

कृतिकर्म- अरहंत, सिद्ध, आचार्य और साधु की पूजा विधि का वर्णन।

दशवैकालिक- दशवैकालिकों का वर्णन करता है। तथा मुनियों की आचार विधि और गोचरविधि का भी वर्णन करता है।

उत्तराध्ययन- जिसमें अनेक प्रकार के उत्तर पढ़ने कोमिलते हैं उसे उत्तराध्ययन कहते हैं। इसमें चार प्रकार के उपसर्ग को कैसे सहन करने चाहिये? बाईस प्रकार के परिषहों के सहन करने की विधि क्या है? इत्यादि प्रश्नों के उत्तरों का वर्णन किया गया है।

कल्प्य व्यवहार- साधुओं के योग्य आचारण का और अयोग्य आचरण के होने पर प्रायश्चित विधि का वर्णन करता है।

कल्प्याकल्प्य- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा मुनियों के लिये यह योग्य है और यह अयोग्य है इस तरह इन सबका वर्णन है।

महाकल्प्य- काल और संहनन का आश्रय कर साधु के योग्य द्रव्य और क्षेत्रादि का वर्णन करता है।

पुण्डरीक- भवनवासी आदि चार प्रकार के देवों में उत्पत्ति के कारण रूप, दान, पूजा, तपश्चरण आदि अनुष्ठानों का वर्णन करता है।

१२. महापुण्डरीओ – सव्वेंदपर्दीदेसु उप्पत्तीए कारणरुवं तवविसेसादि–आचरणस्स वण्णंति।

१३. णिसिद्धो – बहुपयारस्स पायच्चिदाणं पडिपादगं सत्थं णिसिद्धो भणदि।

२. अत्थलिंगज–सुदणाणं – धूमादिगपयत्थरुवलिंगेण यं सुदणाणं उप्पज्जदि, तं अत्थलिंगज–सुदणाणं वट्टदि। एतस्स अण्णं णाम अणुमाणं पि हवदि।

अत्थलिंगज–सुदणाणं बीसपयारस्स वट्टइ –

(१)पज्जायो, (२)पज्जायसमासो, (३)अक्खरं, (४)अक्खरसमासो, (५)पदं, (६)पदसमासो, (७)संघादो, (८)संघादसमासो, (९)पडिपत्ति, (१०)पडिपत्तिसमासो, (११)अणुओगद्वारं, (१२)अणुओगद्वारसमासो, (१३)पाभिदपाभिदं, (१४)पाभिदपाभिदसमासो, (१५)पाभिदं, (१६)पाभिदसमासो, (१७)वत्थु, (१८)वत्थुसमासो, (१९)पुव्वं, (२०)पुव्वसमासो।

विसेसो– इदं लद्धि–अक्खरणाणं णिरावरणं अत्थि, यदोहि अक्खरस्स अणंदभागं णित्तं उग्घाटिददि। इत्थं आगमवयणं अत्थि। अहवा एतस्स

महापुण्डरीक– समस्त इन्द्र और प्रतीन्दों में उत्पत्ति के कारण रूप तपो विशेष आदि आचरण का वर्णन करता है।

निषिद्ध– बहुत प्रकार के प्रायश्चित के प्रतिपादन करने वाले शास्त्र को निषिद्ध को कहते हैं। **ध./१/१,१,२/१९६-९८/९**

अर्थलिंगज श्रुतज्ञान– धूमादिक पदार्थ रूप लिंग से जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है वह अर्थलिंगज श्रुतज्ञान है। इसका दूसरा नाम अनुमान भी है।

अर्थलिंगज २० प्रकार का है– (१)पर्याय, (२)पर्यायसमास, (३)अक्षर, (४)अक्षरसमास, (५)पद, (६)पदसमास, (७)संघात, (८)संघातसमास, (९)प्रतिपत्ति, (१०)प्रतिपत्तिसमास, (११)अनुयोगद्वार, (१२)अनुयोगद्वारसमास, (१३)प्राभृतप्राभृत, (१४)प्राभृतप्राभृतसमास, (१५)प्राभृत, (१६)प्राभृतसमास, (१७)वस्तु, (१८)वस्तुसमास, (१९)पूर्व, (२०)पूर्वसमास। **ष.ख./१३/५,५/गा.१/व.सू./४८/२६०**

विशेष– यह लब्ध्यक्षर ज्ञान निरावरण है, क्योंकि अक्षर का अनंतवाँ भाग नित्य उद्घाटित रहता है। ऐसा आगम वचन है। अथवा इसके आवृत होने पर जीव के

आवित्तस्स सदि जीवस्स अभावस्स पसंगं आगच्छदि। एतम्मि लद्धि-अक्खरणाणे सव्वजीवरासीणं भागं करणे सदि सव्वजीवरासीसु अणंतगुणं णाणविभागपडिच्छेदं हवंति।

सुहुमणिगोदिआ लद्धि-अपज्जात्तगजीवाणं उप्पण्णे सदि पढमसमयम्मि जघण्णं णाणं हवइ। तं एव पायो लद्धि-अक्खरणाणं भासदि। याव णाणं सदा णिरावरणं पकासमाणं य हवइ। सुहुमणिगोदिआ लद्धि-अपज्जात्तगजीवाणं सयं-सयं जाव भवाइँ (३०१२) संभवो संति, तेसु भमिदूणं अंतस्स अपज्जात्तसरीरं त्तिविग्गहेहिं गाहग-जीवाणं पढमविग्गहस्स समये सव्वजघण्णं णाणं हवइ।

दव्वभावरुवाइँ सुदणाणस्स भेयो- आचारांगादिबारसअंगाइँ, उप्पादपुव्वादिचउद्दसपुव्वाइँ सामायियादि-चउद्दसपकीण्णगरुवाइँ य दव्वसुदं जाणणीयं। इत्थं एताणं सवणेण उप्पण्णं जं णाणं तं भावसुदं जाणणीयं। पुग्गलदव्वसरुवं अक्खरपदादिगरुवेण दव्वसुदं अत्थि, ताणं य सवणेण सुदणाणस्स पज्जायरुवं जं उप्पण्णं णाणं अत्थि, तं भावसुदणाणं अत्थि।

अभाव के प्रसंग आता है। इस लब्ध्यक्षर ज्ञान में सब जीव राशि का भाग देने पर सब जीव राशि से अनंतगुणे ज्ञानाविभागप्रतिच्छेद होते हैं।

ध./१३/५,५,४८/२६२/७

सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के प्रथम समय में सबसे जघन्य ज्ञान होता है। इसी को प्राय: लब्ध्यक्षर ज्ञान कहते हैं। इतना ज्ञान हमेशा निरावरण तथा प्रकाशमान रहता है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के अपने अपने जितने भव(६०१२) सम्भव है, उनमें भ्रमण करक अंत के अपर्याप्त शरीर को तीन मोड़ाओं के द्वारा ग्रहण करने वाले जीव के प्रथम मोड़ा के समय में सर्वजघन्य ज्ञान होता है।**गो.जी./मू./३१९-३२०**

द्रव्य और भावरूप श्रुतज्ञान के भेद- आचारांग आदि बारह अंग, उत्पादपूर्व आदि चौदह पूर्व और सामायिक आदि १४ प्रकीर्णक रूप **द्रव्यश्रुत** जानना चाहिये, एवं इनके सुनने से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान सो **भाव श्रुत**जानना चाहिये। पुद्गलद्रव्यस्वरूप अक्षर पदादिक रूप से द्रव्यश्रुत है, और उनके सुनने से श्रुतज्ञान की पर्याय रूप जो उत्पन्न हुआ ज्ञान है वह भावश्रुत है।

गो.जी./जी.प्र./३४८-३४९/७४४/१५, द्र.सं. टी./५८/२३९/१०

मिच्छादंसणस्स उदयेण सह सुदणाणं एव सुद-अण्णाणं अत्थि।

सुदणाणस्स पज्जायवायी- पावयणं, पवयणीयं, पवयणात्थं, गइमयासु मग्गणदा, अप्पा, परम्परालद्धि, अणुत्तरं, पवयणं, पवयणी, पवयणत्तो वा, पवयणसण्णिकस्सो, णयविहि, णयांतरविहि, भंगविहि, भंगविहिविसेसो, पृच्छाविहि, पृच्छाविहि विसेसो, तच्चं, भूदं, भव्वं, भविस्सं, अवितथं, अविहदो, वेदं, ण्यायं, सुद्धो, सम्मत्तदिट्ठि, हेदुवादो, णयवादो, पवरवादो, मग्गवादो, सुदवादो, परवादो, लोकिगवादो, लोकोत्तरीयवादो, अग्गओ, मग्ग-जहाणुमग्गं, पुव्वं, जहाणुपुव्वं पुव्वादिपुव्वं य एते सुदणाणस्स पज्जायाइँ णामाइँ संति।

सुदणाणस्स विसयो - सव्वसद्दो संखादमेवात्थि। दव्वाणं य पज्जायाइँ संखाद-अणंदभेयीओ। अतो संखादसद्दो अणंदपयत्थाणं थूलपज्जायाइँ एव विसयं करिदुं सक्कंति, सव्वपज्जायाइँ ण। उत्तं य- पण्णापणीयभावं अणंदं अत्थि, सद्दो य अत्तंत-अल्पं अत्थि। दव्वसुदाणं विसया अल्पं हविदुं सक्कंति, परंतु भावसुदाणं विसया अणंदं अत्थि।

मिथ्यादर्शन के उदय के साथ श्रुतज्ञान ही श्रुताज्ञान है।

श्रुतज्ञान के पर्यायवाची- प्रावचन, प्रवचनीय, प्रवचनार्थ, गतिमयों में मार्गणता, आत्मा, परम्परा लब्धि, अनुत्तर, प्रवचन, प्रवचनी, प्रवचनाद्वा, प्रवचन सन्निकर्ष, नयविधि, नयान्तरविधि, भंगविधि, भंगविधिविशेष, पृच्छाविधि, पृच्छाविधि विशेष, तत्त्व, भूत, भव्य, भविष्यत, अवितथ, अविहत, वेद, न्याय, शुद्ध, सम्यग्दृष्टि, हेतुवाद, नयवाद, प्रवरवाद, मार्गवाद, श्रुतवाद, परवाद, लौकिकवाद, लोकोत्तरीयवाद, अग्रय, मार्ग यथानुमार्ग, पूर्व, यथानुपूर्व और पूर्वातिपूर्व ये श्रुतज्ञान के पर्याय नाम है। **ध.१३/५,५,५०/२८५/२**

श्रुतज्ञान का विषय- सर्व शब्छ संख्यात ही है और द्रव्यों की पर्यायें संख्यात और अनंत भेदवाली है। अत: संख्यात शब्छ अनंत पदार्थों की स्थूल पय्यायों को ही विषय कर सकते हैं, सभी पर्यायों को नहीं।

कही भी है- प्रज्ञापनीय भाव अनंत है, और शब्द अत्यंत अल्प है।

द्रव्य श्रुत का विषय भले ही अल्प हो परन्तु भावश्रुत का विषय अनंत है।

रा.वा./१/२६/४/८७/२२

४. कुसुदणाणं -

आभीयासुरक्खा भारह-रामायणादि उवएसा।
तुच्छज्ञ असाहणीया सुयअण्णाण त्ति णं।।

चोरसत्थं, हिंसासत्थं, महाभारदं, रामायणादीणं तुच्छं परमत्थसूण्णस्स य सदि साहणकरणस्स अजोग्गं उवदेसा कुसुदणाणं भासदि।

१. पच्चक्खपमाणं - विशदणाणं पच्चक्खणाणं हवइ। तं दोपयारस्स-सांववहारिगो परमत्थिगो य। इंदियणाणं सांववहारिग-पच्चक्खं अत्थि, इंदियादीओ परपयत्थात्तो णिरपेक्खं णवरि अप्पम्मि उप्पण्णं णाणं परमत्थिग-पच्चक्खं अत्थि। जइ पि ण्यायखेत्ते सांववहारिगणाणं पच्चक्खणाणं मण्णंति, परपरमत्थेण जेणदंसणयारा तं णाणं परोक्खं एव मण्णंति। परमत्थिगपच्चक्खं पि दोपयारस्स-सयलपरमत्थिगपच्चक्खं वियलपरमत्थिगपच्चक्खं य। सव्वण्हुदेवस्स त्तिलोयं त्तिकालवत्ती केवलणाणं सयलपच्चक्खं अत्थि, मज्जादाजुत्तो दव्वखेत्तकालभावविसयगा अवहिणाणं मणपज्जयणाणं य वियलं देसपच्चक्खं वा अत्थि।

जदि केवलेण णादं हवदि हि जीवेण पच्चक्खं।।

कुश्रुतज्ञान- चौरशास्त्र, हिंसा शास्त्र या महाभारत, रामायणादि के तुच्छ और परमार्थ शून्य होने से साधन करने के अयोग्य उपदेशों को श्रुताज्ञान(कुश्रुतज्ञान) कहते हैं। **पं.सं./प्रा./१/११९**

प्रत्यक्ष प्रमाण- विशद ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। वह दो प्रकार का है- सांव्यवहारिक और पारमार्थिक। इन्द्रियज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है और इन्द्रिय आदि पर पदार्थों से निरपेक्ष केवल आत्मा में उत्पन्न होने वाला ज्ञान पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। यद्यपि न्याय के क्षेत्र में सांव्यवाहरिक ज्ञान को प्रत्यक्ष मान लियागया है ,पर परमार्थ से जैनदर्शनकार उसे परोक्ष ही मानते हैं। पारमार्थिक प्रत्यक्ष भी दो प्रकार से है- सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष और विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष। सर्वज्ञ भगवान का त्रिलोक व त्रिकालवर्ती केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है और सीमित द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषयक अवधिज्ञान और मन:पर्यय ज्ञान विकल वा देशप्रत्यक्ष है। **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग-३/पृ.१२१**

जदि केवलेण णादं हवदि हि जीवेण पच्चक्खं।। प्र.सा./मू./५८

जइ मत्तं जीवेण (अप्पणो) एव जाणदि ता तं णाणं पच्चक्खं अत्थि।

अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा। तमेव.....प्रतिनियतं प्रत्यक्षम्।।

अक्ष्, व्याप्, ज्ञा धातुओ एकत्थवायी संति, तं अक्खसद्दस्स अत्थं अप्पो अत्थि, णवरि अप्पणो हवइ, तं पच्चक्खं कहइ।

तं पच्चक्खपमाणं दोविहिं- सांववहारिगपच्चक्खं परमत्थिगपच्चक्खं य।

सांववहारिगपच्चाक्खपमाणं - इंदियमणेहिं उप्पण्णं णाणं सांववहारिगपच्चक्खपमाणं कहइ। तं चउव्विहस्स -अवग्गहो, ईहा, अवायो, धारणा।

इन्द्रियानिन्द्रयनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्।।

समीचीणं, जं समीचीणववहारो अत्थि, सो संववहारो हवदि। संववहारस्स लक्खणं पवित्तिणिव्वित्तिरुवाइँ हवंति, संववहारे जो हवदु, सो संववहारिगपच्चक्खं अत्थि। जहा- घटस्स रुवं अहं णिरक्खीअ आदि।

जं णाणं एगदेसो, सपट्टं, किंचि णिम्मलं अत्थि सो संववहारिकगपच्चक्खं अत्थि। इदं णाणं लोकववहारम्मि पच्चक्खपसिद्धं अत्थि। तं संववहारिगपच्चक्खं कहदि।

यदि मात्र जीव के (आत्मा के) द्वारा ही जाना जाये तो वह ज्ञान प्रत्यक्ष है।

अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा। तमेव.....प्रतिनियतं प्रत्यक्षम्।।

अक्ष्, व्याप्, ज्ञा धातुयें एकार्थवाची होती है, इसलिये अक्ष का अर्थ आत्मा है, केवल आत्मा से होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है।

वह प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकार का है- सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष प्रमाण- इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। वह चार प्रकार का है- अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा।

इन्द्रियानिन्द्रयनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्।। पं.मु./२/५

समीचीन अर्थात् जो ठीक व्यवहार है वह संव्यवहार होता है। संव्यवहार का लक्षण प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप होता है संव्यवहार में जो हो सो सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है जैसे घट का रूप मैंने देखा आदि। **द्र.स./टीका/५/१५/९**

जो ज्ञान एकदेश, स्पष्ट, कुछ निर्मल है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। यह ज्ञान लोक व्यवहार में प्रत्यक्षप्रसिद्ध है। इसलिये सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा जाता है।

इदं संववहारिगपच्चक्खं अपहाणरुवेण गोणरुवेण वा पच्चक्खं अत्थि, यदोहि उवचारेण सिज्झदि। समीचीणदिट्ठीए परोक्खपमाणमेवात्थि, यदोहि मइणाणं अत्थि।

परमत्थिग-पच्चक्खं-

पारमार्थिकं पुनरुत्पत्तौ आत्ममात्रापेक्षम्।

परमत्थिगपच्चक्खस्स उप्पत्ति णवरि अप्पा मत्तेण हवइ।

सर्वतो विशदं पारमार्थिकप्रत्यक्षम्।। यज्ज्ञानं साकल्येन स्पष्टं तत्पारमार्थिक-प्रत्यक्षं मुख्यप्रत्यक्षमिति यावत्।।

सव्वरुवेण पच्चक्खणाणं परमत्थिगपच्चक्खं कहदि। जं णाणं सव्वपयारेण णिम्मलं अत्थि, तं परमत्थिगपच्चक्खं अत्थि। तं पहाणपच्चक्खं भासदि।

तद् द्वेधा- देशप्रत्यक्षं सर्वप्रत्यक्षं च।

तं दुवियप्पो - देसपच्चक्खं सयलपच्चक्खं य।

यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष अमुख्य अर्थात् गौण रूप से प्रत्यक्ष है, क्योंकि उपचार से सिद्ध होता है। वास्तव में तो परोक्ष प्रमाण ही है, क्योंकि मतिज्ञान है। **न्या.दी./२/११-१३/३१-३४/७**

पारमार्थिक प्रत्यक्ष-

पारमार्थिकं पुनरुत्पत्तौ आत्ममात्रापेक्षम्। स्या.मं./२८/३२१/८

पारमार्थिक प्रत्यक्ष की उत्पत्ति केवल आत्मा मात्र से होती है।

सर्वतो विशदं पारमार्थिकप्रत्यक्षम्।। यज्ज्ञानं साकल्येन स्पष्टं तत्पारमार्थिक-प्रत्यक्षं मुख्यप्रत्यक्षमिति यावत्।।

न्या.दी./२/११-१३/३१-३४/७

सम्पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष ज्ञान को पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं। जो ज्ञान सम्पूर्ण प्रकार से निर्मल है, वह पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। उसी को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

तद् द्वेधा- देशप्रत्यक्षं सर्वप्रत्यक्षं च। स.सि./१/२०/१२५/९

वह दो प्रकार का है- देश प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष।

१. देसपच्चक्खं (वियलं)-

दव्वे खेत्ते काले भावे जो परिमिदो दु अवबोधो।
बहुविधभेदपभिण्णो सो होदि य वियलपच्चक्खो॥

जं णाणं दव्व-खेत्त-काल-भावेसु परिमिदो, बहुपयारस्स य भेय-पभेयेहिं जुत्तो, तं वियलपच्चक्खं।

कतिपयविषयं विकलम्॥

किंचि पयत्थाणं विसयी वियलपच्चक्खं।

देसपच्चक्खस्स भेयो- ओहिणाणं, विभंगणाणं, मणपज्जयणाणं य।

१.१. ओहिणाणं - सम्मत्तदंसणस्स, चरित्तस्स वा विसुद्धदाए पभावेण कदाचि के साधगे एगविसेसपयारस्स णाणं उप्पज्जइ, जं ओहिणाणं भासदि। जइ वि अयं मुत्तिगं अहवा संओगीपयत्थाइँ जाणिदुं सक्कइ, परंतु इंदियादीओ सहायेण विणा एव जाणणस्स कारणं पच्चक्खं अत्थि। सयलपयत्थाइँ ण जाणणस्स कारणं देसपच्चक्खं अत्थि। भावाणं विद्धि-हाणीहिं सह एतम्मि विद्धिहाणीओ हवंति, सहाविगो अत्थि। अतो अयं अणेगपयारस्स हवंति। एतस्स जाणणस्स सत्तीओ जघण्णरुवेण उक्किट्ठपज्जत्तं अणेगपयारस्स हवइ।

---

१. देश (विकल)प्रत्यक्ष- जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में परिमित तथा बहुत प्रकार के भेद-प्रभेद से युक्त हो वह विकल प्रत्यक्ष है। **ज.प./१३/५०**

कतिपयविषयं विकलम्॥

न्या.दी./२/१३-१४/३४-३६ पं.ध./पू./६९८-६९९

कुछ पदार्थों को विषय करने वाला।

देश प्रत्यक्ष भेद है- अवधिज्ञान, विभंगज्ञान और मन:पर्ययज्ञान।

१.१. अवधिज्ञान- सम्यग्दर्शनया चारित्र की विशुद्धता के प्रभाव से कदाचित् किन्हीं साधकों को एक विशेष प्रकार का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है जिसे अवधिज्ञान कहते हैं। यद्यपि यह मूर्तिक अथवा संयोगी पदार्थों को जान सकता है, परन्तु इन्द्रियों आदि को सहायता के बिना ही जानने के कारण प्रत्यक्ष है। सकल पदार्थों को न जानने के कारण देश प्रत्यक्ष है। भावों की वृद्धि हानि के साथ इसमें वृद्धि हानि होनी स्वाभाविक है। अत: यह कई प्रकार का हो जाता है। इसके जानने की शक्तियाँ जघन्य से उत्कृष्ट पर्यन्त अनेक प्रकार की होती है।

परिणामेसु संकलेसं उप्पण्णे सदि अयं पि छुट्टदि। देवणारगीसु अयं अहेदुगो हवदि, तं भवपत्तयं भासदि, मणुस्सतिरियेसु य गुणपत्तयो। जइ पि लोकिगदिट्ठीए अयं चमक्कारिगो अत्थि, परंतु मोक्खमग्गे एतस्स कोवि मूल्लो ण। एतस्स उप्पत्ति सरीरे ठिदं संख-चक्कादीओ केहिं विसेसचिण्हेहिं कहंति।

अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णिय समए।

जं दव्वखेत्तकालभावाणं अपेक्खाए ओहि, तत्तपरियं अत्थि, सीमाए जुत्तो

सवविसयभूदपयत्था जाणंति, तं ओहिणाणं भणदि।

सीमाजुत्तं जाणणेण कारणं परमागमे एतं सीमाणाणं कहित्ता।

अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमवशामाद्युभयहेतु-सन्निधाने सति अवाग्धीयते अवाग्दधाति अवग्धानमात्रं वावधिः। अवशब्दोऽधः पर्यायवचनः यथा अधः -क्षेपणम् अवक्षेपणम् इति। अधोगतभयद्रव्योविषयो ह्यवधिः। अथवा अवधिर्मर्यादा, अवधिनां प्रतिबद्धं ज्ञानमवधिज्ञानम्। तथाहि 'रुपिष्ववधेः' इति।

परिणामों में संक्लेश उत्पन्न हो जाने पर यह छूट भी जाता है। देव नारकियों में यह अहेतुक होता है, इसलिये भवप्रत्यय कहलाता है, और मनुष्य तिर्यंचों में गुणप्रत्यय। यद्यपि लौकिक दृष्टि से यह चमत्कारिक है, परन्तु मोक्षमार्ग में इसका कोई मूल्य नहीं। इसकी उत्पत्ति शरीर में स्थित शंख, चक्र आदि किन्हीं विशेष चिह्नों से बतायी जाती है।

अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णिय समए।

जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा अवधि अर्थात् सीमा से युक्त अपने विषयभूत पदार्थ को जाने, उसे अवधिज्ञान कहते हैं। **पं.सं./प्र./१/१२३** सीमा से युक्त जानने के कारण परमागम में इसे सीमा ज्ञान कहा गया है।

ध./१/१,११५/१८४/३५९ गो.जी./मू./३७०/७९७

अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमवशामाद्युभयहेतु-सन्निधाने सति अवाग्धीयते अवाग्दधाति अवग्धानमात्रं वावधिः। अवशब्दोऽधः पर्यायवचनः यथा अधः - क्षेपणम् अवक्षेपणम् इति। अधोगतभयद्रव्योविषयो ह्यवधिः। अथवा अवधिर्मर्यादा, अवधिनां प्रतिबद्धं ज्ञानमवधिज्ञानम्। तथाहि 'रुपिष्ववधेः' (त.सू./१/२७) इति। रा.वा./१/९/३/४४/१४ ध./१३/५,५/२१/२१०/१२

ओहिणाणावरणकम्मस्स खयोवसमस्स उप्पण्णे सदि सीमा करेदि (कत्तासाहणं), जेण सीमां करेइ (करणसाहणं), सीमामत्तं (भावसाहणं) ओहि अत्थि। अव् पुव्वगं धा धातुए कम्मादिसाहणेसु ओहि सद्दो णिम्मिदं हवइ। अव् सद्दो अधोवायी अत्थि। जहा- अधोखेपणं अवक्खेवणं त्ति कहइ, तहा एव ओहिणाणं पि अधं पइ बहुपयत्थाणं विसयं करेदि।

अधोगौरव-धर्मत्वात् पुद्गलः अवाङ् नाम त दधाति परिच्छिनत्तीति अवधिः। अधोगोरवधम्मत्तत्तो पुग्गलस्स अवागो सण्णा अत्थि। सो जो धारदि जाणदि वा सो ओहि। अहवा ओहिसद्दो मज्जादात्थगो अत्थि, दव्वखेत्तादीणं मज्जादाए सीमिदणाणं ओहिणाणं अत्थि।

महासकंधेण परमाणुपज्जत्तं सव्वपुग्गलदव्वाइँ, असंखादलोकपमाणखेत्तं, कालभावाइँ य कम्मस्स य संबंधेण पुग्गलभावं पावणा जीवा जो पच्चक्खरुवेण जाणदि, अहवा ओहिणाणावरणस्स खयोवसमेण मुत्तिगपयत्थं जो एगदेसपच्चक्खेण सवियप्पं जाणदि, अहवा इंदियमणाणं अपेक्खाए विणा णवरि अप्पमत्तस्स

अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के उत्पन्न होने पर सीमा करता है(कर्तृसाधन), जिसके द्वारा सीमा की जाती है(करण साधन), सीमामात्र(भाव साधन) अवधि है। अव् पूर्वक धा धातु से कर्म आदि साधनों में अवधि शब्द बनता है। अव् शब्द अधः वाची है। जैसे अधः क्षेपण को अवक्षेपण कहते हैं, वैसे ही अवधिज्ञान भी नीचे की ओर बहुत पदार्थों को विषय करता है।

अधोगौरव-धर्मत्वात् पुद्गलः अवाङ् नाम त दधाति परिच्छिनत्तीति अवधिः।

नीचे गौरव धर्म वाला होने से पुद्गल की अवाग् संज्ञा है। उसे जो धारण करता है अर्थात् जानता है वह अवधि है। अथवा अवधि शब्द मर्यादार्थक है अर्थात् द्रव्य, क्षेत्रादि की मर्यादा से सीमित ज्ञान अवधिज्ञान है।

रा.वा./१/२०/१५/७८/२७ ध./६/१,९-१,१४/२५/८ ध./१३/५,५,२०/२१०/१२ क.पा./१/१-१२/१६/२

महास्कन्ध से लेकर परमाणु पर्यन्त समस्त पुद्गल द्रव्यों को, असंख्यात लोक प्रमाण क्षेत्र, काल और भावों को तथा कर्म के संबंध से पुद्गल भाव को प्राप्त हुये जीवों को जो प्रत्यक्ष रूप से जानता है अथवा अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से मूर्तिक पदार्थ को जो एकदेश प्रत्यक्ष द्वारा सविकल्प जानता है

अपेक्खाए णिम्मलदापुव्वगं सपट्ठरीदीए सवविसयभूदपयत्थाणं णिच्चयं, इदं वियलपच्चक्खरुवं ओहिणाणं अत्थि।

१.२. विभंगणाणं – इदं णाणं मिच्छा हवइ, विवरीयं य एव जाणदि। आयरिअसिरि भासदे–

विवरीओहीणाणं खओवसमियं च कम्मबीजं च।
बेभंगो त्ति व बुच्चइ समत्तणाणी हि समयम्हि।।

जो खयोवसम–ओहिणाणं मिच्छत्तेण संजुत्तेण कारणं विवरीयसरुवं वट्टदि, णवीणकम्माणं य बीजं वट्टइ, तं आगमे कुओहिणाणं विभंगणाणं वा कहदि।

विसेसो – अवधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टिः रूपिणोऽर्थानवगच्छिति तथा मिथ्यादृष्टिः विभंगज्ञानेनेति।

सम्मत्तदिट्ठि ओहिणाणेण रुवीपयत्थाणं जाणदि, मिच्छादिट्ठि विभंगणाणेण रुवीपयत्थाणं जाणदि।

१.१.१ भवपत्तयो – भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्।।

अथवा इन्द्रिय और मन की अपेक्षा बिना केवल आत्मा मात्र की अपेक्षा से निर्मलता पूर्वक स्पष्ट रीति से अपने विषयभूत पदार्थों का निश्चय करना यह विकल प्रत्यक्ष रूप अवधिज्ञान है।

१.२. विभंगज्ञान– यह ज्ञान मिथ्या होता है, और विपरीत ही जानता है। आचार्य ने कहा है–

विवरीओहीणाणं खओवसमियं च कम्मबीजं च।
बेभंगो त्ति व बुच्चइ समत्तणाणी हि समयम्हि।। प.स./प्रा./१/१२०

जो क्षयोपशम अवधिज्ञान मिथ्यात्व से संयुक्त होने के कारण विपरीत स्वरूप है और नवीन कर्म का बीज है उसे आगम में कु–अवधिज्ञान या विभंगज्ञान कहा है।

विशेष– अवधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टिः रूपिणोऽर्थानवगच्छिति तथा मिथ्यादृष्टिः विभंगज्ञानेनेति। स.सि./१/३१/१३८/४

सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञान के द्वारा रूपी पदार्थों को जानता है और मिथ्यादृष्टि विभंगज्ञान के द्वारा।

१.१.१ भवप्रत्यय– भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्।। **त.सू./१/२१**

भव उत्पत्तिः प्रादुर्भावः स प्रत्ययः कारणं यस्य अवधिज्ञानस्य तद् भवप्रत्ययकम्।

जं ओहिणाणं भवणिमित्तेण उप्पज्जइ, सो भवपत्तयो। भवो, उप्पत्ति, पादुरभावं एते पज्जायणाम संति। भवपत्तयो ओहिणाणं देवणारगीसु हवइ।

१.१.२ गुणपत्तयो ओहिणाणं –

अणुव्रत-महाव्रतीनि सम्यक्त्वाधिष्ठानानि गुणः कारणं यस्मावधिज्ञानस्य तद्गुणप्रत्ययकम्।

सव्वघादिफद्धगाणं उदयाभावी खयं, ताणं सदत्थारुवं उवसमस्स णिमित्तेण जं हवइ, तं खायोवसमणिमित्तग-ओहिणाणं अत्थि।

सम्मत्तेण अहिट्ठिदो अणुवयो महावयो गुणाइँ जस्स ओहिणाणस्स कारणं अत्थि, सो गुणपत्तयो अत्थि।

ओहिणाणस्स त्तिभेयो -देसोहिणाणं, परमोहिणाणं, सव्वोहिणाणं य।

१.१.१ देसोहिणाणं – देसस्स अत्थो सम्मत्तं। यदोहि सो संयमस्स अवयवो। सो जस्स णाणस्स ओहि मज्जादा वात्थि, तं देसोहिणाणं।

भव उत्पत्तिः प्रादुर्भावः स प्रत्ययः कारणं यस्य अवधिज्ञानस्य तद् भवप्रत्ययकम्।

जिस अवधिज्ञान के होने में भव निमित्त है वह भवप्रत्यय है। भव, उत्पत्ति, प्रादुर्भाव ये पर्याय नाम है। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है।

१.१.२ गुणप्रत्यय अवधिज्ञान-

अणुव्रत-महाव्रतीनि सम्यक्त्वाधिष्ठानानि गुणः कारणं यस्मावधिज्ञानस्य तद्गुणप्रत्ययकम्। गो.जी./जी.प्र./३७०/७९७/४

सर्वघाती स्पर्धकों के उदयाभावी क्षय और उन्हीं के सदवस्थारूप उपशम के निमित्त से जो होता है वह क्षायोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान है।

सम्यक्त्व से अधिष्ठित अणुव्रत और महाव्रत गुण जिस अवधिज्ञान के कारण है वह गुणप्रत्यय है।

अवधिज्ञान के तीन भेद है- देशावधिज्ञान, परमावधिज्ञान और सर्वावधिज्ञान।

१.१.१ देशावधिज्ञान- देश का अर्थ सम्यक्त्व है क्योंकि वह संयम का अवयव है। वह जिस ज्ञान की अवधि अर्थात् मर्यादा है वह देशावधि ज्ञान है।

१.१.२ परमोहिणाणं - परमं अत्थत्तो असंखादलोकमत्तं संयमभेदो एव जस्स णाणस्स ओहि मज्जादा वा,तं परमोहिणाणं।

१.१.३ सव्वोहिणाणं - सव्वस्स अत्थो अत्थि केवलणाणं। तस्स विसयो जो जो अत्थो हवइ, सो पि उवचारेण सव्वो कहइ। सव्वोहि अत्थत्तो मज्जादा जस्स णाणस्स हवइ, तं ओहिणाणं।

ओहिणाणस्स छद्दुभेयो - अणुगामी, अणणुगामी, वद्दुमाणं, हीयमाणं, अवठिदं, अणवठिदं य।

१.१.१ अणुगामी- कमपि ओहिणाणं जहा सूरियस्स पकासं तेण सह गच्छइ, तहा सवसामीए अणुसरदि, सा अणुगामी भासदे। इदं ओहिणाणं उप्पज्जिदूणं जीवेण गच्छइ। इदं त्तिविहं - खेत्ताणुगामी, भवाणुगामी, खेत्तभवाणुगामी य।

१.१.१.१. खेत्ताणुगामी - जं ओहिणाणं एगखेत्तम्मि उप्पज्जिदूणं सयत्तो परपयोगत्तो वा जीवस्स सयखेत्तम्मि परखेत्तम्मि या विहारस्स करणे विणट्ठं णत्थि।

१.१.१.२. भवाणुगामी- जं ओहिणाणं उप्पज्जिदूणं तस्स जीवस्स अण्णभवे

१.१.२ परमावधिज्ञान- परम अर्थात् असंख्यात लोकमात्र संयमभेद ही जिस ज्ञान की अवधि अर्थात् मर्यादा है वह परमावधि ज्ञान है।

१.१.३ सर्वावधिज्ञान- सर्व का अर्थ है केवलज्ञान। उसका विषय जो जो अर्थ होता है, वह भी उपचार से सर्व कहलाता है। सर्व अवधि अर्थात् मर्यादा जिस ज्ञान की होती है वह सर्वावधि ज्ञान है।

अवधिज्ञान के छह भेद- अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित, अनवस्थित।

१.१.१ अनुगामी- कोई अवधिज्ञान जैसे सूर्य का प्रकाश उसके साथ जाता है वैसे अपने स्वामी का अनुसरण करता है उसे अनुगामी कहते हैं। यह अवधिज्ञान उत्पन्न होकर जीव के साथ जाता है। यह तीन प्रकार का है- क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी, क्षेत्राभवानुगामी।

१.१.१.१. क्षेत्रानुगामी- जो अवधिज्ञान एक क्षेत्र में उत्पन्न होकर स्वत: या परप्रयोग से जीव के स्वक्षेत्र या परक्षेत्र में विहार करने पर विनष्ट नहीं होता है।

१.१.१.२. भवानुगामी- जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर उस जीव के अन्य भव

गच्छइ, तं भवाणुगामी ओहिणाणं अत्थि।

१.१.१.३. खेत्तभवाणुगामी – जं भरद-ऐरावद-विदेहादिखेत्तेसु, देव-णारग-मणुस्स-तिरियभवेसु पि सहेण गच्छइ, तं खेत्तभवाणुगामी ओहिणाणं।

१.१.२ अणणुगामी – कमपि ओहिणाणं ण अणुसरदि, किंतु जहा विमुहस्स पुरिसस्स पसिणस्स उत्तरसरुवं अण्णपुरिसो जं वयणं कहदि, तं वयणं तमेव छुट्टदि, विमुहपुरिसो तं ण उग्गहदि, तहेव इदं ओहिणाणं पि तमेव छुट्टदि। अणणुगामी ओहिणाणं त्तिविहं –

१.१.२.१. खेत्ताणणुगामी – जं खेत्तांतरेण सह ण गच्छइ, भवांतरे एव सह गच्छइ। **१.१.२.२. भवाणणुगामी**– जं भवांतरे सह ण गच्छइ, खेत्तांतरे एव सह गच्छइ।

१.१.२.३. खेत्तभवाणणुगामी – जं खेत्तांतरे भवांतरे य दोण्हं सहेण ण गच्छइ, किंतु एगमेव खेत्तभवेहिं सह संबंधो हवइ, तं खेत्तभवाणुगामी ओहिणाणं भासदि।

में जाता है वह भवानुगामी अवधिज्ञान है।

१.१.१.३. क्षेत्रभवानुगामी– जो भरत, ऐरावत और विदेह आदि क्षेत्रों में तथा देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच भव में भी साथ जाता है वह क्षेत्रभवानुगामी अवधिज्ञान है।

१.१.२ अननुगामी– कोई अवधिज्ञान अनुसरण नहीं करता, किन्तु जैसे विमुख हुये पुरुष के प्रश्न के उत्तर स्वरूप दूसरा पुरुष जो वचन कहता है वह वहीं छूट जाता है, विमुख पुरुष उसे ग्रहण नहीं करता, वैसे ही यह अवधिज्ञान भी वहीं पर छूट जाता है। अननुगामी अवधिज्ञान तीन प्रकार का है–

१.१.२.१. क्षेत्राननुगामी– जो क्षेत्रान्तर के साथ नहीं जाता है भवान्तर में ही साथ जाता है।

१.१.२.२. भवाननुगामी– जो भवान्तर में साथ नहीं जाता है क्षेत्रान्तर ही साथ जाता है।

१.१.२.३. क्षेत्रभवाननुगामी– जो क्षेत्रान्तर और भवान्तर दोनों में साथ नहीं जाता है किन्तु एक ही क्षेत्र और भव के साथ संबंध रखता है वह क्षेत्रभवानुगामी अवधिज्ञान कहलाता है।

१.१.३ वट्ठमाणं – कं वि ओहिणाणं वणस्स णिम्मंथणेण उप्पण्णं सुक्खपत्तेहिं य उवचीयमाणं ईहणस्स समुदायो विद्धिं पावित्ता अग्गीए समाणं सम्मत्तदंसणादिगुणाणं विसुद्धिरुवं परिणामाणं सण्णिहाणेवसत्तो याव परिणामे उप्पज्जइ, तत्तो असंखादलोकं जाणणस्स जोग्गदापज्जत्तं विद्धिं पावइ, तं वट्ठमाणं अत्थि।

१.१.४ हीयमाणं – कं पि ओहिणाणं परिमिद–उवादाणसंतदि–अग्गिसिहाए समाणं सम्मत्तदंसणादिगुणाणं हाणीए उप्पण्णं संकलेसपरिणामाणं विद्धीए याव परिमाणं उप्पज्जइ, तत्तो मत्तं अंगुलस्स असंखादभागपमाणं जाणणस्स जोग्गदापज्जत्तं अवरोहं हवइ, तं हीयमाणं हवइ।

१.१.५ अवट्ठिदं – कं पि ओहिणाणं सम्मत्तदंसणादिगुणाणं समाणरुवेण ठिदस्स कारणं याव परिमाणे उप्पज्जइ, ताव एव हवइ, पज्जायस्स णासपज्जत्तं केवलणाणस्स वा उप्पण्णपज्जत्तं सरीरे ठिदं मस्सा–आदिचिण्हव्व ण अवरोहदि, ण य आरोहदि, तं अवट्ठिदं भासदि।

१.१.६ अणवट्ठिदं – कंपि ओहिणाणं वायुए वेगेण पेरिदं जलस्स तरंगाणं समाणं

१.१.३ वर्द्धमान– कोई अवधिज्ञान जंगल के निर्मन्थन से उत्पन्न हुई और सूखे पत्तों से उपचीयमान ईंधन के समुदाय वृद्धि को प्राप्त हुई अग्नि के समान सम्यग्दर्शनादि गुणों की विशुद्धिरूप परिणामों के सन्निधान वश जितने परिणाम में उत्पन्न होता है, उससे असंख्यातलोक जानने की योग्यता होने तक बढ़ता जाता है वह वर्द्धमान है।

१.१.४ हीयमान– कोई अवधिज्ञान परिमित उपादान संतति वाली अग्नि शिखा के समान सम्यग्दर्शनादि गुणों की हानि से हुये संक्लेश परिणामों के बढ़ने से जितने परिमाण उत्पन्न होता है उससे (लेकर) मात्र अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जानने की योग्यता होने तक घटता चला जाता है उसे हीयमान कहते है।

१.१.५ अवस्थित– कोई अवधिज्ञान सम्यग्दर्शनादि गुणों के समान रूप से स्थिर रहने के कारण जितने परिमाण में उत्पन्न होता है उतना ही बना रहता है पर्याय के नाश होने तक या केवलज्ञान के उत्पन्न होने तक शरीर में स्थित मस्सा आदि चिह्नों वत् न घटता है न बढ़ता है उसे अवस्थित कहते हैं।

१.१.६ अनवस्थित– कोई अवधिज्ञान वायु के वेग से प्रेरित जल की तरंगों के

सम्मत्तदंसणादिगुणाणं विद्धि, कदावि हाणीए सदि याव परिमाणे उप्पज्जइ, तत्तो आरोहदि, जत्थ पज्जत्तं तं आरोहणीयं, अवरोहदि य जत्थ पज्जत्तं तं अवरोहणीयं, तं अणवट्ठिदं भणदि।

१.१.७ पडिपादि – जं ओहिणाणं उप्पज्जिदूणं णिमूलविणासं पावइ, तं सपडिपादि-ओहिणाणं कहदि।

१.१.८ अपडिपादि – जं ओहिणाणं उप्पज्जिदूणं केवलणाणस्स उप्पण्णे सदि एव विणट्ठं हवइ, अण्णहा विणट्ठं ण हवइ, तं अपडिपादि ओहिणाणं भासदे।

१.१.१ एगखेत्तं – जस्स ओहिणाणस्स कारणं जीवसरीराणं एगदेसं हवइ, तं एगखेत्तं ओहिणाणं।

१.१.२ अणेगखेत्तं – जं ओहिणाणं पडिणियदं खेत्तेण विणा सरीरस्स सव्वावयवेसु हवइ, तं अणेगखेत्तोहिणाणं कहदि।

ओहिणाणस्स सामित्तं –

१. सामण्णरुवेण ओहिणाणं चदुग्गदिसु सम्भवो।

२. भवपत्तय-ओहिणाणं णवरि देव-णारगी-तिथ्ययराणं एव हवंति।

समान सम्यग्दर्शनादि गुणों की वृद्धि और कभी हानि होने से जितने परिमाण में उत्पन्न होता है उससे बढ़ता है जहाँ तक उसे बढ़ना चाहिये और घटता है जहाँ तक उसे घटना चाहिये उसे अनवस्थित कहते हैं।

१.१.७ प्रतिपाती- जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर निमूल विनाश को प्राप्त होता है वह सप्रतिपाती अवधिज्ञान है।

१.१.८ अप्रतिपाती- जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर ही विनष्ट होता है अन्यथा विनष्ट नहीं होता है वह अप्रतिपाती अवधिज्ञान है।

१.१.१ एकक्षेत्र- जिस अवधिज्ञान के कारण जीव शरीर का एकदेश होता है वह एक क्षेत्र अवधिज्ञान है।

१.१.२ अनेकक्षेत्र- जो अवधिज्ञान प्रतिनियत क्षेत्र के बिना शरीर के सब अवयवों में रहता है वह अनेकक्षेत्रावधिज्ञान है।

अवधिज्ञान का स्वामित्व-

१. सामान्य रूप से अवधिज्ञान चारों गतियों में सम्भव है।

२. भवप्रत्यय अवधिज्ञान केवल देव, नारकियों और तीर्थंकरों को ही होता है।

३. गुणपत्तयोहिणाणं णवरि मणुस्सतिरियाणं एव हवंति।
४. भवपत्तयोहिणाणं सम्मत्तदिट्ठिमिच्छादिट्ठीणं दोण्हं हवंति।
५. गुणपत्तयोहिणाणं णवरि सम्मदिट्ठीणं एव हवंति।
६. उक्किट्ठदेसोहिणाणं मणुस्सेसु, जघण्णमणुस्सतिरियाणं दोण्हं संभवो संति - देव-णारगीसु ण।
७. उक्किट्ठदेसोहिणाणं उक्किट्ठसंयताणं एव हवंति, परंतु जघण्ण-असंयदसम्मत्तदिट्ठि-आदीणं पि संभवो संति।
८. मिच्छादिट्ठीसु पि ओहिणाणस्स संभावणा हवंति।
९. परमोहिणाणं सव्वोहिणाणं य चरमसरीरीसंयदेसु एव हवंति।
१०. अपज्जात्तावत्थाए ओहिणाणं संभवो अत्थि परंतु विभंगो ण।
११. सण्णीसम्मुच्छणेसु ओहिणाणस्स संभावणा असंभावणा य।

ओहिणाणस्स विसयसीमा -

१. दव्वस्स अपेक्खाए रुवीपयत्थाणं एव जाणदि।
२. दव्वपमाणस्स अपेक्खाए अणंतं ण जाणदि।

---

३. गुणप्रत्यय अवधिज्ञान केवल मनुष्य और तिर्यंचों को ही होता है।
४. भवप्रत्यय अवधिज्ञान सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों को होता है।
५. गुणप्रत्यय अवधिज्ञान केवल सम्यग्दृष्टियों को ही होता है।
६. उत्कृष्ट देशावधि मनुष्यों में तथा जघन्य मनुष्य व तिर्यंच दोनों के संभव है- देव, नारकियों में नहीं।
७. उत्कृष्ट देशावधि उत्कृष्ट संयतों को ही होता है पर जघन्य असंयत सम्यग्दृष्टि आदि को भी संभव है।
८. मिथ्यादृष्टियों में भी अवधिज्ञान की सम्भावना होती है।
९. परमावधि व सर्वावधि चरमशरीरी संयतों में ही होता है।
१०. अपर्याप्तावस्था में अवधिज्ञान सम्भव है पर विभंग नहीं।
११. संज्ञी संमूच्छनों में अवधिज्ञान की सम्भावना और असम्भावना।

अवधिज्ञान की विषय सीमा-

१. द्रव्य की अपेक्षा रूपी को ही जानता है।
२. द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनंत को नहीं जानता है।

३. जघण्णोहिणाणं एगसेणीं एव जाणदि।

४. ओहिणाणे पच्चक्खरुवेण वट्टमाणं सव्वपज्जायविसिट्ठवत्थूणं णाणं पावइ, तहा भूदभावी–असंखादपज्जायविसिट्ठवत्थूणं णाणं णिरक्खदि।

५. भावस्स अपेक्खा पोग्गलं, संयोगीजीवस्स य पज्जाया जाणदि।

३. मणपज्जयणाणं –

पृच्छेण विणा अण्णमणट्ठिदं विसयं पच्चक्खरुवेण जाणदि तं मणपज्जयणाणं भासदि। जइ पि एतस्स विसयो ओहिणाणेण अल्पं अत्थि, परंतु सुहुमे सदि अहिगं विसुद्धं वट्टइ। तं य इदं संयमीसाधूणं एव उप्पण्णं, संभवो अत्थि। जइ पि पच्चक्खं अत्थि परंतु एतम्मि मणस्स णिमित्तं उवचारेण मण्णदि। इदं दुव्वियप्पो– रिजुमदि विपुलमदि य। पढमं णवरि चिंतिदपयत्थाणं एव जाणंति, परंतु विपुलमदि चिंतिदं, अचिंतिदं, अद्धचिंतिदं, चिंतिदपुव्वं य सव्वं जाणणम्मि समत्थं अत्थि।

परकीयमनोगतोऽर्थो मनः, मनसः पर्यायाः विशेषाः मनःपर्यायाः, तान् जानातीति मनःपर्ययज्ञानम्।

---

३. जघन्य अवधिज्ञान एक श्रेणी को ही जानता है।

४. अवधिज्ञान में प्रत्यक्षरूप से वर्तमान समस्त पर्यायविशिष्ट वस्तु का ज्ञान पाया जाता है तथा भूत और भावी असंख्यातपर्याय विशिष्ट वस्तु का ज्ञान देखा जाता है।

५. भाव की अपेक्षा पुद्गल व संयोगी जीव की पर्यायों को जानता है।

३. मनःपर्ययज्ञान– बिना पूछे किसी के मन की बात को प्रत्यक्ष जान जाना मनःपर्ययज्ञान है। यद्यपि इसका विषय अवधिज्ञान से अल्प है, पर सूक्ष्म होने के कारण उससे अधिक विशुद्ध है। और इसलिये यह संयमी साधुओं को ही उत्पन्न होना सम्भव है। यद्यपि प्रत्यक्ष है परन्तु इसमें मन का निमित्त उपचार से स्वीकार किया गया है। यह दो प्रकार का है– ऋजुमति और विपुलमति। प्रथम केवल चिन्तित पदार्थ को ही जानता है, परन्तु विपुलमति चिन्तित, अचिन्तित, अर्धचिन्तित व चिन्तितपूर्व सब को जानने में समर्थ है।

परकीयमनोगतोऽर्थो मनः, मनसः पर्यायाः विशेषाः मनःपर्यायाः, तान् जानातीति मनःपर्ययज्ञानम्। ध./१३/५.५/२१/२१२/४

परकीयमणं पावित्तं अत्थस्स णाम मणं अत्थि। तस्स मणस्स (मणोगदो पयत्थो) पज्जायाणं विसेसाणं वा णाम मणपज्जयणाणं। सो जो जाणदि, तं मणपज्जयणाणं अत्थि।

चिंताए अचिंताएअद्धचिंताए विविहभेयगयं।
जं जाणइ णरलोए तं चिय मणपज्जवं णाणं॥

चिंताए, अचिंताए, अद्धचिंताए य विसयभूदं अणेगभेयरुवं पयत्थं जं णाणं णरलोकस्स अंतो-अंतो जाणदि, तं मणपज्जयणाणं वट्टइ।

तदावरणकर्मक्षयोपशमादि-द्वितीयनिमित्तवशात्
परकीयमनोगतार्थज्ञानंमनःपर्ययः।

मणपज्जयणाणावरणकम्मस्स खयोवसमादि-णिमित्तवसत्तो
परकीयमणोगदात्थणाणं मणपज्जयणाणं।

मणपज्जवणाणं णाम परमणीगयाइं मुत्तिदव्वाइं तेण मणेण सह पच्चक्खं जाणदि।

जं परकीयमणोगदमुत्तिगदव्वाणं तेण मणेण सह पच्चक्खं जाणदि, तं मणपज्जयणाणं।

परकीय मन को प्राप्त हुये अर्थ का नाम मन है। उस मन (मनोगत पदार्थ) की पर्यायों/विशेषों का नाम मनःपर्याय है। उन्हें जो जानता है वह मनःपर्ययज्ञान है।

चिंताए अचिंताएअद्धचिंताए विविहभेयगयं।
जं जाणइ णरलोए तं चिय मणपज्जवं णाणं॥ ति.प./४/९७३

चिंता, अचिंता और अर्धचिंता के विषयभूत अनेक भेदरूप पदार्थ को जो ज्ञान नरलोक के भीतर जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान है।

तदावरणकर्मक्षयोपशमादि-द्वितीयनिमित्तवशात् परकीयमनोगतार्थज्ञानं मनःपर्ययः। रा.वा./१/९/४/४४/१९

मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशमादि रूप सामग्री के निमित्त से परकीय मनोगत अर्थ को जानना मनःपर्यय ज्ञान है।

मणपज्जवणाणं णाम परमणीगयाइं मुत्तिदव्वाइं तेण मणेण सह पच्चक्खं जाणदि। ध./१/१,१,२/९४/४

जो दूसरों के मनोगत मूर्तिक द्रव्यों को उस मन के साथ प्रत्यक्ष जानता है, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

मणपज्जयणाणस्स विसयो- परकीयमणट्ठिदं सण्णा, सुमइ, चिंता, मइ य आदीओ जीवाणं य जम्म-मरणाइँ, सुहदुहाइँ, णयरादीणं य विणासं, अइविट्ठि, सुविट्ठि, दुब्भिक्ख-सुभिक्खाइँ, खेम-अखेमाइँ, भयरोगा य आदीणं पयत्थाणं जाणदि।

मणपज्जयणाणस्स मज्जादा- (दव्वखेत्तकालभावाणं अपेक्खाए)

तदनंतभागे मनःपर्ययस्य।

दव्वस्स अपेक्खाए मणपज्जयणाणस्स पवित्ति ओहिणाणस्स विसयस्स अणंदभागम्मि हवइ। मणपज्जयणाणं दव्वस्स अपेक्खाए जघण्णरुवेण एगसमयी ओदारिगसरीरस्स णिज्जरारुवं दव्वपज्जत्तं जाणदि। उक्किट्ठरुवेण कम्मणरुवदव्वस्स अणंदभागेसु एगभागपज्जत्तं जाणदि। खेत्तस्स अपेक्खाए जघण्णरुवेण गव्यूति पुथुत्तं अत्थत्तो दोत्तिकोसपज्जत्तं खेत्तं जाणदि, उक्किट्ठरुवेण य मणुस्सखेत्तस्स अंतो-अंतो जाणदि, तत्तो बहिर ण। कालस्स अपेक्खाए जघण्णरुवेण दोत्तिभवा, उक्किट्ठरुवेण य असंखादभवा जाणदि। भावस्स अपेक्खाए दव्वपमाणेण णिरुविदं दव्वस्स सत्तिं जाणदि।

मनःपर्ययज्ञान का विषय- दूसरों के मन में स्थित संज्ञा, स्मृति, चिंता, मति आदि को तथा जीवों के जीवन-मरण, सुख-दुःख, तथा नगर आदि का विनाश, अतिवृष्टि, सुवृष्टि, दुर्भिक्ष-सुभिक्ष, क्षेम-अक्षेम, भय-रोग आदि पदार्थों को जानता है।

मनःपर्ययज्ञान की मर्यादा- (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा)-

तदनंतभागे मनःपर्ययस्य। त.सू./१/२८

द्रव्य की अपेक्षा मनःपर्ययज्ञान की प्रवृत्ति अवधिज्ञान के विषय के अनन्तवें भाग में होती है। मनःपर्ययज्ञान द्रव्य की अपेक्षा जघन्य रूप से एक समय में होने वाले औदारिक शरीर के निर्जरारूप द्रव्य तक को जानता है। उत्कृष्ट रूप से कार्मण रूप द्रव्य के अनंत भागों में से एक भाग तक को जानता है। क्षेत्र की अपेक्षा जघन्यरूप से गव्यूति पृथक्त्व अर्थात् दो तीन कोस तक क्षेत्र को जानता है और उत्कृष्ट रूप से मनुष्य क्षेत्र के भीतर तक जानता है, उससे बाहर नहीं। काल की अपेक्षा जघन्य रूप से दो तीन भवों को और उत्कृष्ट रूप से असंख्यात भवों को जानता है। भाव की अपेक्षा द्रव्य प्रमाण से निरूपण किये गये द्रव्य की शक्ति को जानता है। **ध./१/१,२/१४/५**

मणपज्जयस्स भेयो -

विउलमदि पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं।

मणपज्जयणाणस्स दुवियप्पो - रिजुमदि विउलमदि य।

३.१ ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान- ऋज्वी निर्वर्तिता प्रगुणा च। कस्मान्निर्वर्तिता। वाक्कायमनःकृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानात्। ऋज्वी मतिर्यस्य सोऽयं ऋजुमतिः।

रिजुसद्दस्स अत्थो णिप्पण्णं, पगुणं वा। अत्थत्तो परकीयमणं पत्तं वयण-काय-मणकिदात्थस्स विण्णाणेण णिप्पण्णं रिजु वा जाए मदि अत्थि सा रिजुमदि भासदि।

परकीयमतिगतोऽर्थः उपचारेण मतिः। ऋज्वी अवक्रा। ऋज्वी मतिर्यस्य स ऋजुमतिः।

परकीयमदिगदात्थो उवचारेण मदि भासदे। रिजुसद्दस्स अत्थो वक्कदारहिदं अत्थि। (वट्टमाणकालं वा अत्थि) रिजु अत्थि मदि जाए, सा रिजुमदि भासदे।

जो अत्थो जहा ठिदं अत्थि, तस्स तेण पयारेण चिंतणं, अहवा पण्णापणं, अहवा

मनःपर्ययज्ञान के भेद-

विउलमदि पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं।

प.का./ता.वृ./प्रक्षेपक गाथा/४३-४

मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का है- ऋजुमति और विपुलमति।

३.१ ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान- ऋज्वी निर्वर्तिता प्रगुणा च। कस्मान्निर्वर्तिता। वाक्कायमनःकृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानात्। ऋज्वी मतिर्यस्य सोऽयं ऋजुमतिः।स.सि./१/१२३/१२९/२

ऋजु का अर्थ निर्वर्तित (निष्पन्न) और प्रगुण (सीधा) है। अर्थात् दूसरे के मन को प्रापत वचन, काय और मनकृत अर्थ के विज्ञान से निर्वर्तित या ऋजु जिसकी मति है वह ऋजुमति कहलाता है।

परकीयमतिगतोऽर्थः उपचारेण मतिः। ऋज्वी अवक्रा। ऋज्वी मतिर्यस्य स ऋजुमतिः। ध./९/४,१,१०/६२/९

दूसरे के मन में स्थित अर्थ उपचार से मति कहा जाता है। ऋजु का अर्थ वक्रता रहित है। (या वर्तमान काल है) ऋजु है मति जिसकी उसे ऋजुमति कहते है।

जो अर्थ जैसे स्थित है उसका उसी प्रकार से चिंतवन करना अथवा

अहिणयेण पदंसणं, मण-वयण-कायसंबंधी रिजुमदिणाणं अत्थि।

रिजुमदीए भेयो ताए लक्खणं - एताए त्तिभेया-

१. रिजुमणस्किदत्थज्जं - तं सरलमणोगदपयत्थं जाणदि।

२. रिजुवयणकिदत्थज्जं - सरलवयणगदपयत्थं जाणदि।

३. रिजुकायकिदत्थज्जं - सरलकायगदपयत्थं जाणदि।

जहा- कस्सावि कस्सावि समये सरलमणेण कस्सावि पयत्थस्स फट्टरुवेण वियारं करीअ, फट्टवाणीए वियारं पगटीअ, कायेण य वि उहयफल-णिप्पादणत्थो अंगोपांगादीणं संकोचणं, पसरणं आदिरुवं फट्टरुवेण किरियां करीअ। कालांतरे ता विसुमरस्स कारणं पुणो ताए चिंतणं, उच्चारणं आदिकरणं समत्थो ण हवीअ। एतस्स पयारस्स अत्थं पृच्छे सदि, पृच्छे वा विणा पि रिजुमदि मणपज्जयणाणं जाणदि, जं एसो येण पयारेण चिंतीअ, कहीअ, करीअ वा। अयं य अत्थो आगमेण सिज्झदि।

मणपज्जयस्स विसयो- परकीयमणे ट्ठिदं सण्णा, सुमदि, चिंता, मइ आदीओ, जीवाणं य जम्ममरणाइँ, सुहदुहाइँ, णयरादीणं य विणासं, अइविट्ठि, सुविट्ठि,

---

प्रज्ञापन करना अथवा अभिनय द्वारा प्रदर्शन करना मन-वचन व काय सम्बन्धी ऋजुमति ज्ञान है।

ऋजुमति के भेद व उनके लक्षण- इसके तीन भेद है- ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ (वह सरल मनोगत पदार्थ को जानता है), ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ (सरल वचनगत पदार्थ को जानता है) ऋजुकायकृतार्थज्ञ (सरल कायगत पदार्थ को जानता है)। जैसे किसी ने किसी समय सरल मन से किसी पदार्थ का स्पष्ट विचार किया, स्पष्ट वाणी से विचार व्यक्त किया और काय से भी उभयफल निष्पादनार्थ अंगोपांग आदि का सुकोड़ना, फैलाना आदि रूप स्पष्ट क्रिया की। कालान्तर में उन्हें भूल जाने के कारण पुनः उन्हीं का चिंतवन व उच्चारण आदि करने को समर्थ न रहा। इस प्रकार के अर्थ को पूछे जाने पर या बिना पूछे भी ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जान लेता है, कि इसने इस प्रकार सोचा था या बोला था या किया था। और यह अर्थ आगम से सिद्ध है। **रा.वा./१/२३/७/८४/२९**

मनःपर्ययज्ञान का विषय- दूसरों के मन में स्थित संज्ञा, स्मृति, चिंता, मति आदि को तथा जीवों के जीवन-मरण, सुख-दुःख, तथा नगर आदि का विनाश,

दुब्भिक्ख-सुब्भिक्खाइँ, खेम-अखेमाइँ, भयरोगा आदिपयत्था जाणदि। वयत्तमणा जीवा सवपरजीवेहिं संबंधी अत्थं सो जाणदि, अवयत्तमणा जीवा जीवेहिं संबंधी अत्थं ण जाणदि। यत्थत्थं अत्थत्तो जहाट्ठिदि त्तिकालगदं अत्थं वट्टमाणे संसयादिरहिदं हविदूणं, मणेण चिंतणं अहवा वयणेण जापणं अहवा कायेण अहिणयी कस्सावि जणस्स, सयमेव वा जणो मणेण संबंधी अत्थं जाणदि। अतीदाणागदकालम्मि वट्टणस्स मणस्स विसयं ण जाणदि। सरलमणवयणकायपत्तं एव जाणदि वक्कं ण।

रिजुमदि मणपज्जयणाणस्स मज्जादा-

१. दव्वस्स अपेक्खाए- जघण्णेण एकसमयसंबंधी ओदारिगसरीरस्स तं वितिरत्ति णिज्जरं जाणदि, अत्थत्तो तस्स जघण्ण-उक्किट्ठणिज्जराओ ण जाणिदूणं अजघण्ण-अणुक्किट्ठा जाणदि।

२. खेत्तस्स अपेक्खाए- सो जघण्णेण गव्यूदिपुथुत्तपमाणं (अत्थत्तो अट्ठनवघणकोस पमाणटीआ) खेत्तं, उक्कस्सेण य योजणं पुथुत्तस्स (अट्ठनवघणकोस पमाणं) अंतो-अंतो जाणदि, बारसस्स ण।

अतिवृष्टि, सुवृष्टि, दुर्भिक्ष-सुभिक्ष, क्षेम-अक्षेम, भय-रोग आदि पदार्थों को जानता है। व्यक्त मनवाले अपने और दूसरे जीवों से सम्बन्ध रखने वाले अर्थ को वह जानता है, अव्यक्त मनवाले जीवों से सम्बन्ध रखने वाले अर्थ को नहीं जानता। यथार्थ अर्थात् यथास्थित त्रिकालगत अर्थ को वर्तमान में संशयादि रहित होकर, मन से चिंतवन अथवा वचन से ज्ञापन अथवा काय से अभिनय करने वाले किसी व्यक्ति के या अपने ही व्यक्ति मन से सम्बन्ध रखने वाले अर्थ को जानता है। अतीत व अनागत काल में वर्तन वाले के मन की बात नहीं जानता। सरल मन-वचन-काय प्राप्त को ही जानता है वक्र को नहीं।

ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान की मर्यादा-

१. द्रव्य की अपेक्षा- जघन्य से एक समय संबंधी औदारिक शरीर की तद्भवतिरिक्त निर्जरा को जानता है, अर्थात् उसकी जघन्य व उत्कृष्ट निर्जरा को न जानकर (अजघन्य व अनुत्कृष्ट को जानता है)।ध.९/४,१,१०/६३/५

२. क्षेत्र की अपेक्षा- वह जघन्य से गव्यूतिपृथक्त्व प्रमाण (अर्थात् आठ-नौ घनकोश प्रमाण-टीका) क्षेत्र को और उत्कर्ष से योजन पृथक्त्व (आठ-नौ घनयोजन प्रमाण) के भीतर की बात जानता है, बारह की नहीं।

३. कालस्स अपेक्खाए- सो जघण्णेण दोत्तिभवा जाणदि, उक्किट्ठेण सत्त-अट्ठभवा जाणदि। (अत्थत्तो वट्टमाणभवं छुड्डिऊणं दो सत्तं वा भवा, ताणं वा सहिदं त्ति, अट्ठं वा भवा जाणदि। भवस्स कालं अणियदं जाणणीयं।)

४. भावस्स अपेक्खाए- जघण्ण-उक्किट्ठदव्वेसु ताणं जोग्गं असंखादपज्जाणं जघण्ण-उक्किट्ठरिजुमदि जाणदि।

३.२ विपुलमति मनःपर्ययज्ञान- परकीयमनोगतोऽर्थो मतिः। विपुला विस्तीर्णा।

परकीयमदिट्ठिदं पयत्थं मदि इदि कहदि। विउलस्स अत्थो वित्थीण्णं अत्थि।

विपुला मतिर्यस्य सोऽयं विपुलमतिः।

जस्स मदि विउलं अत्थि सा विउलमदि भासदि।

सरलं वक्कं वा मणवयणकायेहिं किदा कोवि अत्थो तस्स चिंतवणजुत्तो कस्सावि अण्णजीवस्स मणं जाणणेण णिप्पण्णं अणिप्पण्णं मदिं विउलं भासदि। इत्थं विउलं कुटिलं वा मदि अत्थि जस्स सो विउलमदि अत्थि।

ष.ख.,१३/५,५/सूत्र६५-६८/३३८-३३८

३. काल की अपेक्षा- वह जघन्य से दो-तीन भवों को जानता है, उत्कृष्ट से सात-आठ भवों को जानता है। (अर्थात् वर्तमान भव को छोड़कर दो या सात भवों तथा उस सहित तीन या आठ भवों को जानता है। भव का काल अनियत जानना चाहिये।)**ष.ख.,१३/५,५/सूत्र६५-६८/३३८-३३८**

४. भाव की अपेक्षा- जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्यों में उसके योग्य असंख्यात पर्यायों को जघन्य व उत्कृष्ट ऋजुमति जानता है। **ध.९/४,१,१०/६५/६**

३.२ विपुलमति मनःपर्ययज्ञान- परकीयमनोगतोऽर्थो मतिः। विपुला विस्तीर्णा। दूसरे की मति में स्थित पदार्थ मति कहा जाता है। विपुल का अर्थ विस्तीर्ण है।

ध./९/४,१,११/६६/२

विपुला मतिर्यस्य सोऽयं विपुलमतिः।स.सि./१/१२३१२९/४

जिसकी मति विपुल है वह विपुलमति कहलाता है।

सरल या वक्र मन-वचन-काय के द्वारा किया गया कोई अर्थ उसके चिंतवन युक्त किसी अन्य जीव के मन को जानने से निष्पन्न या अनिष्पन्न मति को विपुल कहते हैं। ऐसी विपुल या कुटिल मति है जिसकी सो विपुलमति है।

विउलमदीअ भेयो- विउलमदि मणपज्जयणाणस्स छहभेया संति- तं सरलमणोगदपयत्थं जाणदि, तं सरलवयणमणोगदपयत्थं जाणदि, तं सरलकायमणोगदपयत्थं जाणदि, तं कुटिलमणोगदपयत्थं जाणदि, तं कुटिलवयणगदपयत्थं जाणदि, तं कुटिलकायगदपयत्थं जाणदि। अयं वट्टमाणजीवाणं अवट्टमाणजीवाणं वा अहवा वयत्तमणा अवयत्तमणा य जीवाणं सुहादीओ जाणदि।

विउलमदीए विसयो- मणेण माणसं जाणिदूणं अण्णजीवाणं कालेण विसेसिदसण्णा (सद्दकलापो), सुमइ(अतीदकालगददिट्ठसुदं अणुभूदविसयो वा), मदि (अणागदकालगदो विसयो), चिंता (वट्टमाणकालगदो विसयो) एते सव्वे, ताणं य जीवणमरणाइँ, लाहालाहाइँ सुहासुहाइँ य, णयर-देस-जणपद-खेट-कव्वट-आदीणं य विणट्ठं, अइविट्ठि-अणाविट्ठीओ, सुविट्ठि-दुव्विट्ठीओ, सुभिक्ख-दुब्भिक्खाइँ, खेम-अखेमाइँ, भयरोगा य रुवाइँ पयत्था पि पच्चक्खं जाणदि। वयत्तमणा य सय-अण्णजीवेहिं संबंधी अत्थं जाणदि, अवयत्तमणा य जीवेहिं संबंधी अत्थं जाणदि।

गो.जी./जी.प्र./४३९/८५८/१७

विपुलमति के भेद- विपुलमति मन:पर्ययज्ञान के छह भेद है- वह सरल मनोगत पदार्थ को जानता है, वह सरल वचनगत पदार्थ को जानता है, वह सरल कायगत पदार्थ को जानता है, वह कुटिल मनोगत पदार्थ को जानता है, वह कुटिल वचनगत पदार्थ को जानता है, वह कुटिल कायगत पदार्थ को जानता है। यह वर्तमान जीव या अवर्तमान जीवों के अथवा व्यक्त मनवाले तथा अव्यक्त मनवाले जीवों के सुखादि को जानता है। **म.व.१/३/२६/१**

विपुलमति का विषय- मन के द्वारा मानस को जानकर दूसरे जीवों के काल से विशेषित संज्ञा(शब्दकलाप), स्मृति(अतीत कालगत दृष्टश्रुत व अनुभूत विषय), मति (अनागतकालगत विषय), चिंता(वर्तमानकालगत विषय) इन सबको, तथा उनके जीवित-मरण, लाभ-अलाभ व सुख-दु:ख को, तथा नगर, देश, जनपद, खेट-कर्वट आदि के विनाश को, तथा अतिवृष्टि-अनावृष्टि, सुवृष्टि-दुर्वृष्टि, सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, क्षेम-अक्षेम, भय और रोग रूप पदार्थों को भी (प्रत्यक्ष) जानता है। और व्यक्त मनवाले अपने और दूसरे जीवों से संबंध रखने वाले अर्थ को तथा अव्यक्त मनवाले जीवों से सम्बन्ध रखने वाले अर्थ को जानता है।

विउलमदि मणपज्जयणाणस्स मज्जादा-

१. दव्वस्स अपेक्खाए- जघण्णेण एगसमयरुवं इंदियणिज्जरं जाणदि। उक्किट्ठदव्वस्स जापणत्थं तस्स जोग्गं असंखादकल्पाणं समयाइं सलागारुवेण ठापिदं करिऊणं, मणदव्ववग्गणाए अणंदभागो धण्णाणुक्किट्ठं एगसमयपबद्धं समखण्डं करिदूणं दाणे तम्मि एगखण्डदव्वस्स बीओ विकप्पो हवइ। एतम्मि समयम्मि सलाकारासीअ एगरुवं अल्पं करणीयं। एतेण पयारेण एतेण विहाणेण सलाकारासि समांते पज्जत्तं उग्गहणीयं। एतम्मि अंतिमदव्ववियप्पं उक्किट्ठं विउलमदि जाणदि। जघण्णाक्किट्ठदव्वाणं मज्झमवियप्पाइं तं वियदिरित्तं अत्थत्तो मज्झमविउलमदि जाणदि।

२. खेत्तस्स अपेक्खाए- जघण्णेण योजणपृथुत्तपमाणं उक्कस्सेण माणुसोत्तरपव्वत्तस्स अंतो-अंतो जाणदि, बहि ण जाणदि।

३. कालस्स अपेक्खाए - जघण्णेण सत्त-अट्ठभवा, उक्कस्सेण य असंखादभवा जाणदि। (एतस्स कालस्स अंतो-अंतो) जीवाणं गइ-अगइं (भुत्तं, किदं पडिसेविदं अत्थं) जाणदि।

विपुलमति मनःपर्ययज्ञान की मर्यादा-

१. द्रव्य की अपेक्षा- जघन्य से एक समयरूप इन्द्रिय निर्जरा को जानता है। उत्कृष्ट द्रव्य के ज्ञापनार्थ उसके योग्य असंख्यात कल्पों के समयों को शलाकारूप से स्थापित करके, मनोद्रव्यवर्गणा के अनन्तवें धन्यानुत्कृष्ट एक समयप्रबद्ध को समखण्ड करके देने पर उनमें एक खण्ड द्रव्य का द्वितीय विकल्प होता है। इस समय शलाका राशि में से एक रूप कम करना चाहिये। इस प्रकार इस विधान से शलाका राशि समाप्त होने तक ले जाना चाहिये। इनमें अंतिम द्रव्य विकल्प को उत्कृष्ट विपुलमति जानता है। जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्यके मध्यम विकल्पों को तद्व्यतिरिक्त अर्थात् मध्यम विपुलमति जानता है। गो.जी./मू./४५२-४५४/८६७

२. क्षेत्र की अपेक्षा- जघन्य से योजनपृथक्त्व प्रमाण और उत्कर्ष से मानुषोत्तर शैल के भीतर तक जानता है, बाहर नहीं जानता।

३. काल की अपेक्षा- जघन्य से सात-आठ भवों को ओर उत्कर्ष से असंख्यात भवों को जानता है। (इस काल के भीतर) जीवों की गति-अगति (भुक्त, कृत और प्रतिसेवित अर्थ) को जानता है।

४. भावस्स अपेक्खाए – जं-जं दव्वं एतं णादं अत्थि, तं तस्स असंखादपज्जायं जाणदि। विउलमदीए विसयभूदं भावो जघण्णं दु रिजुमदीए उक्किट्ठभावेण असंखादगुणा, उक्किट्ठं य असंखादलोकपमाणं अत्थि।

रिजुमदीए विउलमदीए अंतरं –

१. विसुद्धीए पडिघादस्स अपेक्खाए दोण्णि अंतरं संति। रिजुमदीए विउलमदि दव्वखेत्तकालभावाणं अपेक्खाए विसुद्धअरं। अपडिघादीए अपेक्खाए पि विउलमदि विसिट्ठं अत्थि यदोहि एताणं सामीणं पवट्टमाणं चरित्तं पावंति परंतु रिजुमदि पडिपादि अत्थि, यदोहि एताणं सामीणं कसायेण उदयेण अवरोहकमेण चरित्तं पावइ।

२. रिजुमदीए इंदियमणाणं अपेक्खाए हवइ, विउलमदीए ण। यदोहि इदं मदिणाणेण अण्णजीवस्स माणसं जाणिदूणं पच्छा मणपज्जयणाणेण तं गदो अत्थं जाणणस्स णियमं विउलमदीए णाणस्स णत्थि, यदोहि सो अचिंतिदत्थे पि विसयं करेइ।

मणपज्जयणाणस्स सामित्तं – सामण्णेण रिद्धिधारी पवट्टमाणं संयतं एव संभवो अत्थि। विसेसेण- आगमेण उत्तं, जं मणपज्जयणाणमणुस्साणं एव उप्पज्जदि,

---

४. भाव की अपेक्षा- जो-जो द्रव्य इसे ज्ञात है उस उसकी असंख्यात पर्यायों को जानता है। विपुलमति का विषयभूत भाव जघन्य तो ऋजुमति के उत्कृष्ट भाव से असंख्यात गुणा है और उत्कृष्ट असंख्यात लोकप्रमाण है।

ऋजुमति और विपुलमति में अन्तर-

१. विशुद्धि और प्रतिघात की अपेक्षा दोनों में अंतर है। ऋजुमति से विपुलमति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा विशुद्धतर है। अप्रतिघाती की अपेक्षा भी विपुलमति विशिष्ट है क्योंकि इसके स्वामियों के प्रवर्द्धमान चारित्र पाया जाता है परन्तु ऋजुमति प्रतिपाती है, क्योंकि इसके स्वामियों के कषाय के उदय से घटता हुआ चारित्र पाया जाता है। त.सू./१/२४

२. ऋजुमति में इन्द्रियों व मन की अपेक्षा होती है, विपुलमति में नहीं। क्योंकि यह मतिज्ञान से दूसरे जीव के मानस को जानकर पीछे मन:पर्ययज्ञान से तद्गत अर्थ को जानने का नियम विपुलमति ज्ञान का नहीं है, क्योंकि वह अचिंतित अर्थों को भी विषय करता है। ध1१३/५,५,३६/३३३/१

मन:पर्ययज्ञान का स्वामित्व- सामान्य से- ऋद्धिधारी प्रवर्द्धमान संयत को ही सम्भव है। विशेष से- आगम में कहा गया है कि मन:पर्ययज्ञान मनुष्यों के ही

तिरियदेवणारगीणं ण। मणुस्सेसु पि गब्भजेसु सम्मुच्छणेसु ण। गब्भजेसु पि कम्मभूमिजेसु, अकम्मभूमिजेसु ण। कम्मभूमिजेसु पि पज्जात्तगेसु एव होइ, अपज्जात्तेगे ण। तम्मि पि सम्मत्तदिट्ठीणं एव होइ, मिच्छादिट्ठीए, सासादणस्स सम्मत्तमिच्छादिट्ठीणं ण। तम्मि पि संयते एव हवइ, असंयताणं संयतासंयताणं ण। संयतेसु वि पमत्तत्तो खीणकसायगुणट्ठाणपज्जत्तं एव होइ, एत्तत्तो उवरि ण। तम्मि पि पवट्ठमाणं चारित्तीए एव हवइ, हीयमाणचारित्तीं ण। तम्मि पि सत्तरिद्धीसु अण्णतमरिद्धिं पावणा एव हवइ, अण्णस्स ण। रिद्धिपत्तेसु पि कस्सावि एव होइ, सव्वं ण।

रिजुमदिविउलमदीणं सामित्तं – रिजुमदिमणपज्जयणाणकसायस्स उदयसहिदं हीणमाणं चारित्तीए हवइ, विउलमदि य विसिट्ठपयारस्स पवट्ठमाणं चारित्तीणं। रिजुमदि पडिघादी अत्थि, अत्थत्तो अचरमसरीरीणं पि संभवो अत्थि, परंतु विउलमदि अपडिघादी अत्थि, अत्थत्तो चरमसरीरीणं एव संभवो अत्थि।

उत्पन्न होता है, तिर्यंच, देव और नारकियों के नहीं। मनुष्यों में भी गर्भजों में, सम्मूर्च्छनों में नहीं। गर्भजों में भी कर्मभूमिजों में, अकर्मभूमिजों में नहीं। कर्मभूमिजों में भी पर्याप्तकों में ही होता है, अपर्याप्तकों को नहीं। उनमें भी सम्यग्दृष्टियों केही होता है, मिथ्यादृष्टि, सासादन व सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के नहीं। उनमें भी संयतों को ही होता है, असंयतो या संयतासंयतो के नहीं। संयतों में भी प्रमत्त से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक ही होता है, इससे ऊपर नहीं। उनमें भी प्रवर्द्धमान चारित्रवालों के ही होता है, हीयमान चारित्रवालों को नहीं। उनमें भी सात ऋद्धियों में से अन्यतम ऋद्धि को प्राप्त होने वाले के ही होता है, अन्य के नहीं। ऋद्धिप्राप्तों में भी किन्हीं के ही होता है, सबको नहीं।

ऋजुमति और विपुमति का स्वामित्व– ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान कषाय के उदय सहित हीनमान चारित्रवालों के होता है और विपुलमति विशिष्ट प्रकार के प्रवर्द्धमान चारित्रवालों के। ऋजुमति प्रतिघाती है अर्थात् अचरम देहियों के भी सम्भव है, पर विपुलमति अप्रतिघाती है अर्थात् चरम देहियों के ही सम्भव है।

ओहिणाणे मणपज्जयणाणे य अंतरं –

१. मणपज्जयणाणं ओहिणाणस्स समाणं सवमुहेण विसयं ण जाणदि किंतु परकीयमणपणालीए जाणदि। अतो मणं जहा अतीदाणागदाणं अत्थाणं वियारं चिंतणं करेइ, ण णिरक्खइ, तहा मणपज्जणाणी पि भूदभविस्से जाणदि, णिरक्खइ ण। सो वट्टमाणं पि मणं विसयविसेसायारेण जाणदि।

२. मणपज्जयणाणं विसिट्ठसंयमस्स णिमित्तेण उप्पज्जइ, परंतु ओहिणाणं भवस्स णिमित्तेण, गुणं य अत्थत्तो खयोवसमस्स णिमित्तेण उप्पज्जइ।

३. मणपज्जयणाणं ता मदिपुव्वगं हवइ, किंतु ओहिणाणं ओहिदंसणं पुव्वगं होइ।

२. सयलपच्चक्खं – सकलप्रत्यक्षं केवलज्ञानम्, विषयीकृतत्रिकाल-गोचराशेषार्थत्वात् अतीन्द्रियत्वात् अक्रमवृत्तित्वात् निर्व्यवधानात् आत्मार्थसंनिधानमात्रप्रवर्तनात्।

केवलणाणं सयलपच्चक्खं अत्थि, यदोहि सो त्तिकालविसयगो सव्वपयत्थे विसयी, अदींदियो, अक्कमवित्ति, ववहाणेण रहिदं, अप्पा य पयत्थस्स णिगटदा मत्तेण पवित्ति अत्थि।

अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में अंतर–

१. मन:पर्ययज्ञान अवधिज्ञान की तरह स्वमुख से विषयों को नहीं जानता किन्तु परकीय मन प्रणाली से जानता है। अत: मन जैसे अतीत और अनागत अर्थों का विचार चिंतन तो करता है, देखता नहीं है, उसी तरह मन:पर्ययज्ञानी भी भूत और भविष्यत को जानता है, देखता नहीं। वह वर्तमान भी मन को विषयविशेषाकार से जानता है।

२. मन:पर्ययज्ञान विशिष्ट संयम के निमित्त से उत्पन्न होता है परन्तु अवधिज्ञान भव के निमित्त से और गुण अर्थात् क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न होता है।

३. मन:पर्ययज्ञान तो मतिपूर्वक होता है किन्तु अवधिज्ञान अवधिदर्शन पूर्वक होता है।

२. सकल प्रत्यक्ष– केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है, क्योंकि वह त्रिकालविषयक समस्त पदार्थों को विषय करने वाला, अतीन्द्रिय, अक्रमवृत्ति, व्यवधान से रहित और आत्मा एवं पदार्थ की समीपता मात्र से प्रवृत्त होने वाला है।

ध./९/४,१,४५/१४२/७

सर्वद्रव्यपर्यायविषयं सकलम्।

सव्वदव्वाइँ, ताणं य सव्वपज्जाणं जाणयारो णाणं सयलपच्चक्खं कहदि।

अयमर्थो यज्ज्ञानं समस्तकर्मक्षयोद्भवं साक्षात्। प्रत्यक्षं क्षायिकमिदमक्षातीतं सुखं तदक्षायिकम्।।

जं णाणं सव्वकम्माणं खयेण उप्पण्णं सक्खादं पच्चक्खरुवेण अदींदियो खायिगं य सुहरुवं अत्थि, तं इदं अविणस्सर-सयलपच्चक्खं अत्थि।

केवलणाणं - जीवणमुत्तजोगीणं एगणिव्विकप्पं अतींदियो अइसयणाणं अत्थि जं इच्छेण विणा बुद्धीए य पयोगस्स सव्वांगेण सव्वकालं खेत्तं वा संबंधी सव्वपयत्थे हत्थामलकव्व टंकोक्कीण्णं पच्चक्खं णिरक्खदि। एतेण कारणेण सो योगी सव्वण्हु भासदि। सवपरग्गाहीकारणेण एतम्मि पि णाणस्स सामण्णं लक्खणं घटिदं हवइ। अयं णाणस्स सहाविगं सुद्धं य परिणमणं अत्थि।

केवलणाणस्स वयत्पत्ति अत्थो- बाह्येनाम्यनतरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलम्।

सर्वद्रव्यपर्यायविषयं सकलम्। न्या.दी./२३४-३६

समस्त द्रव्यों और उनकी समस्त पर्यायों को जानने वाले ज्ञान को को सकल प्रत्यक्ष कहते हैं।

अयमर्थो यज्ज्ञानं समस्तकर्मक्षयोद्भवं साक्षात्। प्रत्यक्षं क्षायिकमिदमक्षातीतं सुखं तदक्षायिकम्।। पं.ध./पू./६९८

जो ज्ञान सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाला साक्षात् प्रत्यक्ष रूप अतीन्द्रिय तथा क्षायिक सुखरूप है वह यह अविनश्वर सकल प्रत्यक्ष है।

केवलज्ञान- जीवन्मुक्त योगियों का एक निर्विकल्प अतीन्द्रिय अतिशय ज्ञान है जो बिना इच्छा व बुद्धि व बुद्धि के प्रयोग के सर्वांग से सर्वकाल व क्षेत्र संबंधी सर्व पदार्थों को हस्तामलकवत् टंकोत्कीर्ण प्रत्यक्ष देखता है। इसी के कारण वह योगी सर्वज्ञ कहते है। स्व व पर ग्राही होने के कारण इसमें भी ज्ञान का सामान्य लक्षण घटित होता है। यह ज्ञान का स्वाभाविक व शुद्ध परिणमन है।

केवलज्ञान का व्युत्पत्ति अर्थ- बाह्येनाम्यनतरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलम्। स.सि./१/९/१४/६

अत्थीजणा जस्स बाहिर अब्भंतरं य तवेण मग्गस्स सेवणं अत्थत्तो सेवणं करेंति, तं केवलणाणं कहइ।

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्।

मोहणीयकम्मस्स खयस्स सदि णाणावरणस्स दंसणावरणस्स अंतरायकम्मस्स खयस्स दि केवलणाणं पावइ।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।

सव्वदव्वाइँ ताणं सव्वपज्जायाइँ केवलणाणस्स विसयो अत्थि।

असहायमिति वा।

केवलसद्दो असहायवायी अत्थि, तं असहायणाणं केवलणाणं भासदि। केवलं असहायं भासदे। जं णाणं असहायं अत्थत्तो इंदियस्स आलोकस्स य अपेक्खारहिदं अत्थि, त्तिकालगोयर-अणंतपज्जायेहिं समवायसंबंधं पत्तं अणंतवत्थुओ जाणयारो अत्थि, असंकुटितं अत्थत्तो सव्व-वापको अत्थि, पडिपक्खीरहिदं य अत्थि, तं केवलणाणं भणदि।

अर्थीजन जिसके लिये बाह्य और अभ्यंतर तप के द्वारा मार्ग का सेवन अर्थात् सेवन करते हैं वह केवलज्ञान कहलाता है।

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्। त.सू./१०/१

मोहनीय कर्म के क्षय होने पर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म के क्षय होने पर केवलज्ञान प्राप्त होता है।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य। त.सू./१/२९

सभी द्रव्य और उनकी सभी पर्यायें केवलज्ञान का विषय है।

असहायमिति वा।

केवल शब्द असहायवाची है, इसलिये असहाय ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। केवल असहाय को कहते हैं। जो ज्ञान असहाय अर्थात् इन्द्रिय और आलोक की अपेक्षा रहित है, त्रिकालगोचर अनन्तपर्यायों से समवायसम्बन्ध को प्राप्त अनंत वस्तुओं को जानने वाला है, असंकुटित अर्थात् सर्व व्यापक है और असपत्न अर्थात् प्रतिपक्षी रहित है उसे केवलज्ञान कहते है।

ध./१३,५,५२१/२१६/४

केवलणाणस्स भेयो-

केवलणाणमेयविधं, कम्मक्खएण उप्पज्जमाणत्तादी।

केवलणाणं एगं एव पयारस्स अत्थि, यदोहि सो कम्मखयेण उप्पज्जइ। केवलणाणं सयं पज्जायो अत्थि, पज्जायेण अण्णपज्जायं ण हवइ। तं केवलणाणस्स सवं परं य जाणयारो दोण्णिसत्तीणं अभावो अत्थि।

केवलणाणस्स विसेसदाओ -

१. सव्वं जाणंति पुणो पि वाकुलं ण हवइ। विस्सं णिरंतरं जाणित्ता णिरिक्खत्ता य पि केवलीं मणपवित्तीए अभावे सदि इक्खापुव्वगं ण वट्टइ।

२. केवलणाणं सव्वांगेण जाणदि। पत्तापत्ता सव्वपयत्थे जुगवं सवसव्वावयवेहिं केवली जाणदि।

३. केवलणाणं पडिबिम्बव्व जाणदि। सयाप्पणो जाणणेण अयं त्तिलोकं जाणदि, यदोहि अप्पणो भावरुवं केवलणाणे अयं लोको पडिबिम्बव्व हवित्ता वसदि।

केवलज्ञान के भेद-

केवलणाणमेयविधं, कम्मक्खएण उप्पज्जमाणत्तादी।

ध./१२/४,२,१४,५/४८०/७

केवलज्ञान एक ही प्रकार का है, क्योंकि वह कर्म क्षय से उत्पन्न होता है। केवलज्ञान स्वयं पर्याय है और पर्याय के दूसरी पर्याय होती नहीं है। इसलिये केवलज्ञान के स्व व पर को जाननेवाली दो शक्तियों का अभाव है।

केवलज्ञान की विशेषतायें-

१. सर्व को जानता हुआ भी व्याकुल नहीं होता। विश्व को निरन्तर जानते हुये और देखते हुये भी केवली को मन:प्रवृत्ति का अभाव होने से इच्छा पूर्वक वर्तन नहीं होता।

२. केवलज्ञान सर्वांग से जानता है। प्राप्त और अप्राप्त सभी पदार्थों को युगपद् अपने सभी अवयवों से केवली जानता है। **क.पा./१/१,१/४६/६५/२**

३. केवलज्ञान प्रतिबिम्बवत् जानता है। अपने आत्मा के जानने से यह तीन लोक जान जाता है, क्योंकि आत्मा के भावरूप केवलज्ञान में यह लोक प्रतिबिम्बवत् हुआ बस रहा है। **प.प्र./मू./९९**

४. केवलणाणं टंकोक्कीण्णव्व जाणदि। एगणायगभावस्स सव्वणेया जाणणस्स सहावत्तो, सव्वदव्वमत्तं, जहा ते दव्वाइँ णायगे उक्कीण्णं हवंति, चित्तितं हवंति, अंतो पवेसंति, कीलिदं हवंति, मग्गं संति, समाहिदं हवंति, एतेण पयारेण एगक्खणे एव जं पच्चक्खं करेइ।

णाणं चित्तपट्टस्स समाणं अत्थि। जहा- चित्तपट्टे अतीदं अणागदं वट्टमाणं य वत्थुओ आलेखायारं सक्खादं एगसमयम्मि भासिदं हवंति। तेण पयारेण णाणरुवी भित्तीए पि भासिदं हवंति।

५. केवलणाणं अक्कमेण जाणदि। केवलणाणं सव्वजीवा सव्वभावा य सम्मत्तपयारेण जुगवं जाणंति, णिरक्खंति, विहारं य करेंति।

जहा- सूरियो सवपकासे जित्तियो पयत्थो समाविट्ठं हवंति, ताणं सव्वाणं जुगवं पकासिदं करेदि। तहा- सिद्धपरमेट्ठीए केवलणाणं सव्वणेया जुगवं जाणदि।

'ज्ञ' सहावं किंचि पि अगोयरं णत्थि, यदोहि सो कमेण ण जाणदि, एतत्तो अण्णपयारस्स सहावस्स तम्मि णिसेहं अत्थि। ते ता अवग्गहादिकिरियाहिं ण

---

४. केवलज्ञान टंकोत्कीर्णवत् जानता है। एक ज्ञायकभाव का समस्त ज्ञेयों को जानने का स्वभाव होने से, समस्त द्रव्यमात्र को, मानों वे द्रव्य ज्ञायक में उत्कीर्ण हो गये हो, चित्रित हो गये हो, भीतर घुस गये हो, कीलित हो गये हो, डूब गये हो, समा गये हो, इस प्रकार एक क्षण में ही जो प्रत्यक्ष करता। **प्र.सा./त.वृ./२००**

ज्ञान चित्रपट् के समान है। जैसे चित्रपट में अतीत, अनागत और वर्तमान वस्तुओं आलेख्याकार साक्षात् एक समय में भासित होते हैं। उसी प्रकार ज्ञानरूपी भित्ति में भी भासित होते हैं।**प्र.सा./त.वृ./३७**

५. केवलज्ञान अक्रम रूप से जानता है। केवलज्ञान सब जीवों और सब भावों को सम्यक् प्रकार से युगपत् जानते हैं, देखते हैं, और विहार करते हैं।

ष.ख./१३/५५/सू./८२/३४६

जैसे सूर्य अपने प्रकाश में जितने पदार्थ समाविष्ट होते हैं उन सबको युगपत् प्रकाशित करता है वैसे सिद्ध परमेष्ठी का केवलज्ञान सम्पूर्ण ज्ञेयों को युगपत् जानता है। **भ.आ./मू./२१४२**

'ज्ञ' स्वभाव को कुछ भी अगोचर नहीं है, क्योंकि वह क्रम से नहीं जानता, तथा इससे अन्य प्रकार के स्वभाव का उसमें निषेध है। वे उन्हें अवग्रहादि

जाणंति। ...अतो अक्कमिगं गहणे सदि समक्खं संवदेणस्स आलंबणभूदं सव्वदव्वपज्जाया पच्चक्खं एव संति।

६. केवलणाणं तत्तकालियव्व जाणदि। दव्वजादीणं सव्वपज्जाया णाणे विसिट्ठदापुव्वगं वट्ठदि। णेयायारा (जहा उग्गहीअ एतेण पयारेण सव्वपयत्था) पृथु अपृथु य पकासिदं करित्ता णाणमुत्ति मुत्तं एव हवइ।

७. केवलणाणं सव्वं जाणदि। विचित्तविसमवत्थुओ सव्वपयत्था जाणंति, तं णाणं खायिगणाणं भणदि। मुत्त-अमुत्ता, चेदणाचेदणा, दव्वाइँ, सयं, सव्वं दिट्ठा णाणं अतींदियो अत्थि, पच्चक्खं अत्थि। णिरावरणकेवली सुहुमं विवहिदं विपक्किट्ठं य सव्वपयत्था जाणदि।

८. केवलणाणं सव्वलोयं अलोयं य जाणदि। अप्पा णाणपमाणं, णाणं णेयपमाणं, णेयं लोयालोयपमाणं, तं णाणं सव्वगदं। जं सम्पुण्णं अत्थि, समग्गं अत्थि, असहायं अत्थि, सव्वभावगदं अत्थि, लोये, अलोये य अण्णाणरुवं तिमिरेण रहिदं अत्थि, अत्थत्तो सव्ववापगं सव्वणायगं य अत्थि, तं केवलणाणं जाणणीयं।

क्रियाओं से नहीं जानते।.....अतः अक्रमिक ग्रहण होने समक्ष संवदेन की आलम्बनभूत समस्त द्रव्य पर्यायें प्रत्यक्ष ही हैं।

६. केवलज्ञान तात्कालिकवत् जानता है। द्रव्य जातियों की सर्व पर्याय ज्ञान में विशिष्टता पूर्वक वर्तती है। ज्ञेयाकारों को (मानो पी गया है इस प्रकार समस्त पदार्थों को) पृथक् और अपृथक् प्रकाशित करता हुआ ज्ञानमूर्ति मुक्त ही रहता है।**प्र.सा./मू./३७,५२**

७. केवलज्ञान सब कुछ जानता है। विचित्र और विषम वस्तु समस्त पदार्थों को जानता है उस ज्ञान को क्षायिक कहा है। मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन, द्रव्यों को, स्व को और समस्त को देखने वाले को ज्ञान अतीन्द्रिय है, प्रत्यक्ष है। निवावरण केवली सूक्ष्म व्यवहित और विप्रकृष्ट सभी पदार्थों को जानता है।

प्र.सा./मू./४७ नि.सा./मू./१६७ क.पा./१/१,१/४६/६४/४

८. केवलज्ञान समस्त लोकालोक को जानता है। आत्मा ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है, ज्ञेय लोकालोक है, इसलिये ज्ञान सर्वगत है। जो सम्पूर्ण, समग्र, असहाय, सर्वभावगत, लोक और अलोकों में अज्ञानरूप तिमिर से रहित अर्थात् सर्व व्यापक व सर्वज्ञायक है, उसे केवलज्ञान जानना चाहिये। **पं.सं./प्रा./१/१२६**

९. केवलणाणं सव्वदव्वखेत्तकालभावा जाणदि। सयोप्पण्णं णाणेण दंसणेण य जुत्तो भगवदो देवलोयेण असुरलोयेण य सह मणुस्सलोयस्स अगइ, गइ, चयणं, उववादं, बंधं, मोक्खं, रिद्धि, ठिदि, जुदि, अणुभागं, तक्कं, कलं, मणं, माणसिगं, भुत्तं, किदं, पडिसेविदं, आदिकम्मं, अरहोकम्मं, सव्वलोया, सव्वजीवा सव्वभावा सम्मत्तपयारेण जुगवं जाणंति, णिरक्खंति, विहारं य करेंति।

१०. सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।

केवलणाणं सव्वदव्वाइँ सव्वज्जाया जाणदि।

सव्वदव्वेहिं सव्वपज्जायेहिं सहिदं सव्वजगदं सिद्धभगवदो णिरक्खदि, ता पि ते मोहरहिदं एत हवंति।

११. केवलणाणं त्तिकालवत्ती पज्जाया जाणदि। एगदव्वम्मि अतीदं, अणागदं वट्टमाणं पज्जायरुवं जित्तियो अत्थपज्जायो विउंजणपज्जायो अत्थि, तं पमाणं तं दव्वं हवइ, जं केवलणाणस्स विसयो वट्टदि।

१२. केवलणाणं सदभूदं असदभूदं य पज्जाया जाणदि। ताणं जीवादिदव्वजादीणं सव्वविज्जमाणो अविज्जमाणो य पज्जायो तत्तकालियपज्जायव्व विसिट्ठदापुव्वगं

---

९. केवलज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जानता है। स्वयं उत्पन्न हुये ज्ञान और दर्शन से युक्त भगवान् देवलोक और असुरलोक के साथ मनुष्य लोक की अगति, गति, चयन, उपपाद, बंध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, युति, अनुभाग, तर्क, कल, मन, मानसिक, भुक्त, कृत, प्रतिसेवित, आदिकर्म, अरह:कर्म, सब लोकों, सब जीवों और सब भावों को सम्यक् प्रकार से युगपत् जानते हैं, देखते हैं, और विहार करते हैं।**ष.ख./१३/५,५/सू.८२/३४६**

१०. केवलज्ञान सर्व द्रव्य व पर्यायों को जानता है। **त.सू./१/२९**

सम्पूर्ण द्रव्य और सम्पूर्ण पर्यायों से भरे हुये सम्पूर्ण जगत् को सिद्ध भगवान् देखते हैं तो भी वे मोहरहित ही रहते हैं। **प्र.सा./मू./४९**

११. केवलज्ञान त्रिकाली पर्यायों को जानता है। एक द्रव्य में अतीत, अनागत और वर्तमान पर्याय रूप जितनी अर्थ पर्याय और व्यंजनपयार्य है तत्प्रमाण वह द्रव्य होता है जो केवलज्ञान का विषय है। **ध./१,१,१,१३६/१९९/३८६**

१२. केवलज्ञान सद्भूत और असद्भूत बस पर्यायों को जानता है। उन जीवादि द्रव्य जातियों की समस्त विद्यमान और अविद्यमान पर्याय तात्कालिक पर्यायों

णाणे वट्टदि।

१३. पयोजणभूदं अपयोजणभूदं य सव्वं जाणदि।

१४. केवलणाणे एतत्तो पि अणंदगुणा जाणणस्स समत्थं वट्टदि। जित्तियं अयं लोयालोयं सहावेण एव अणंदं अत्थि, तत्तो पि जइ अणंदाणंदो विस्सो अत्थि, ता तं पि जाणणस्स समत्थं केवलणाणे एव अत्थि, इत्थं केवलणाणस्स अपरिमिदं महच्चं जाणणीयं।

जुगवं एगजीवस्स कित्तियं णाणं? -

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः॥

एगं आदीए लेऊणं एगजीवम्मि जुगवं चदुणाणपज्जत्तं हविदुं सक्कंति। जइ एगं हविस्सदि, ता केवलणाणं, दोण्णि हविस्संति ता मदिणाणं सुदणाणं य, तीण्णि हविस्संति ता मदिणाणं, सुदणाणं, ओहिणाणं य, मदिणाणं वा, सुदणाणं, मणपज्जयणाणं य, जइ चदु हविस्संति ता मदिणाणं, सुदणाणं, ओहिणाणं मणपज्जयणाणं य।

की भांति विशिष्टता पूर्वक ज्ञान में वर्तती है। **प्र.सा./मू./३७**

१३. प्रयोजनभूत और अप्रयोजनभूत सबको जानता है।

१४. केवलज्ञान में इससे भी अनंतगुणा जानने की सामर्थ्य है। जितना यह लोकालोक स्वभाव से ही अनंत है, उससे भी यदि अनंतानंत विश्व है तो उसको भी जानने की सामर्थ्य केवलज्ञान में है, ऐसा केवलज्ञान का अपरिमित माहात्म्य जानना चाहिये। **रा.वा./१/२९/९/९०/५**

एक साथ एक जीव के कितने ज्ञान?-

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः॥ त.सू./१/३०

एक को आदि में लेकर एक जीव में एक साथ चार ज्ञान तक हो सकते हैं। यदि एक होगा तो केवलज्ञान, दो होंगे तो मति और श्रुतज्ञान, तीन होगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान या मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, और यदि चार होगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान।

५. दंसणोवओगो

दंसणसद्दस्स विउपत्ति अत्थो य - पश्यति दृश्यतेऽनेन दृष्टिमात्रं वादर्शनम्

जं णिरक्खदि (कत्तासाहणं), जेण णिरक्खदे (करणसाहणं), अहवा दंसणमत्तं (भावसाहणं)।

एवंभूदणयोपेक्खाए दंसणपज्जायेण परिणदाप्पा एव दंसण अत्थि। जं णिरक्खदि, तं दंसणं अत्थि। दंसणमत्तं एव दंसणं अत्थि।

दंसणोवओगो - विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति।

विसयविसयीणं सण्णिपादे सदि दंसणं हवइ। विसयविसयीणं सण्णिपादे सदि 'किंचि अत्थि' इत्तियं मत्तं गहणं, विसेसणविसेसभावेण सूण्णो 'किंचि अत्थि' इच्छेवादि आयारस्स गहणं दंसणस्स सरुवं अत्थि। (बाहिरत्थग्गहणस्स उवसंहारस्स पढमसमयेण बाहिरत्थस्स अग्गहणस्स अंतिमसमयपज्जत्तं दंसणोवओगो हवइ।) जीवस्स चेतण्णसत्ति दप्पणस्स णिम्मलदा सत्तिव्व अत्थि। जहा- बाहिरपयत्थाणं पडिबिम्बेण विणा दप्पणं पासाणं अत्थि, तेण पयारेण णेयायारेण विणा चेदणा जडं अत्थि।

दर्शनोपयोग

दर्शन की व्युत्पत्ति अर्थ- पश्यति दृश्यतेऽनेन दृष्टिमात्रं वा दर्शनम्

जो देखता है(कर्तृसाधन), जिसके द्वारा देखा जाय(करणसाधन), अथवा देखनामात्र(भाव साधन)। **स.सि./१/१/६/१**

एवंभूतनय की अपेक्षा दर्शनपर्याय से परिणत आत्मा ही दर्शन है। जो देखता है सो दर्शन है। देखना मात्र ही दर्शन है। **रा.वा./१/१**

दर्शनोपयोग- विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति। **स.सि./१/१५/१११/३**

विषय और विषयी का सन्निपात होने पर दर्शन होता है। विषयविषयी सन्निपात होने पर 'कुछ है' इतना मात्र ग्रहण, विशेषण विशेष्य भाव से शून्य 'कुछ है' इत्यादि आकार का ग्रहण दर्शन का स्वरूप है।(बाह्यार्थग्रहण के उपसंहार के प्रथम समय से लेकर बाह्यार्थ के अग्रहण के अंतिम समय तक दर्शनोपयोग होता है।) जीव की चैतन्यशक्ति दर्पण की स्वच्छत्व शक्तिवत् है। जैसे- बाह्य पदार्थों के प्रतिबिम्ब के बिना का दर्पण पाषाण है, उसी प्रकार ज्ञेयाकार के बिना की चेतना जड़ है।

तहा- दप्पणस्स णिजणिम्मलव्व चेदणस्स णिजपडिभासं दंसणं अत्थि, दप्पणस्स पडिबिम्बव्व चेदणाए समाहिदं णेयायारं णाणं अत्थि। जेण पयारेण पडिबिम्बं विसिट्ठ-णिम्मलदा परिपुण्णं दप्पणं अत्थि, तेण पयारेण णाणं विसिट्ठं णिम्मलदा परिपुण्णा चेदणा अत्थि। तहा- दंसणरुवं अंतरचिदपकासो दु सामण्णं णिव्विकप्पं य अत्थि, णाणरुवं य बाहिरचिदपकासो विसेसो सविकप्पं य अत्थि। जइ पि दंसणं सामण्णे सदि एगं अत्थि परंतु सामण्णजणा अवबोहाय तस्स चक्खु आदि भेयं करित्ता। जेण पयारेण दप्पणं णिरक्खे दप्पणं पडिबिम्बं य जुगवं णिरक्खंति, परंतु पृथु-पृथु पयत्था दंसणेण ते अग्गं-पच्छा णिरक्खंति, एतेण पयारेण अप्पसमाहीए लीणं माहजोगीओ दु दंसणं णाणं य जुगवं पडिभासिदं हवंति, परंतु लोगिगजणा ते कमेण हवंति। जइ पि सव्वसंसारीजीवा इंदियणाणत्तो पुव्वं दंसणं अवस्सं हंवति, परंतु खणिगे सुहुमे य सदि ताणं गम्मविसयो णत्थि। समाहिगदजोगी ताणं पच्चक्खं करेंति। णिजसरुवस्स परिचयं सवसंवेदणं वा यदोहि दंसणोवओगेण एव हवइ, एतेण कारणेण सम्मत्तदंसणे सद्धासद्दस्स पयोगं ण करिऊणं दंसणसद्दस्स

तहाँ दर्पण की निजी स्वच्छतावत् चेतन का निजी प्रतिभास दर्शन है और दर्पण के प्रतिबिम्बवत् चेतना में पड़े ज्ञेयाकार ज्ञान है। जिस प्रकार प्रतिबिम्ब विशिष्ट स्वच्छता परिपूर्ण दर्पण है उसी प्रकार ज्ञान विशिष्ट स्वच्छता परिपूर्ण चेतना है। तहाँ दर्शनरूप अंतर चित्प्रकाश तो सामान्य व निर्विकल्प है, और ज्ञानरूप बाह्य चित्प्रकाश विशेष व सविकल्प है। यद्यपि दर्शन सामान्य होने के कारण एक है परन्तु साधारण जनों को समझाने के लिये उसके चक्षु आदि भेद कर दिये गये हैं। जिस प्रकार दर्पण को देखने पर तो दर्पण व प्रतिबिम्ब दोनों युगपत् दिखाई देते हैं, परन्तु पृथक्-पृथक् पदार्थों को देखने से वे आगे पीछे दिखाई देते हैं, पइसी प्रकार आत्म समाधि में लीन महायोगियों को तो दर्शन व ज्ञान युगपत् प्रतिभासित होते हैं, परन्तु लौकिक जनों को वे क्रम से होते हैं। यद्यपि सभ्ज्ञी संसारी जीवों को इन्द्रिय ज्ञान से पूर्व दर्शन अवश्य होता है, परन्तु क्षणिक व सूक्ष्म होने के कारण उसकी पकड़ वे नहीं कर पाते। समाधिगत योगी उसका प्रत्यक्ष करते हैं। निज स्वरूप का परिचय या स्वसंवेदन क्योंकि दर्शनोपयोग से ही होता है, इसलिये सम्यग्दर्शन में श्रद्धा शब्द का प्रयोग न करके दर्शन शब्द का प्रयोग किया है। चेतना दर्शन व ज्ञान स्वरूप होने के कारण ही

पयोगं करीअ। चेदणादंसणस्स णाणसरुवस्स य कारणे सदि एव सम्मत्तदंसणं सामण्णं, सम्मत्तणाणं य विसेसधम्मं इदि उत्तं।

दंसणावरणकम्मस्स खयोवसमेण खयेण वा उप्पण्णं णिरायारं सत्तामत्तं गाही उवओगं करिदूणं चेदणाए परिणदिविसेसं **दंसणोवओगो** भणदि। अत्थत्तो विसयविसयीणं सण्णिपादं (संजोगं) दंसणं त्ति कहदि। एतम्मि वत्थूए विसेसायारादीणं ण उग्गहदि।

दंसणोवओगस्स भेयो -

दंसणाणुवदेण अत्थि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी केवलदंसणी चेदि।

दंसणं चदुधा चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं॥

दंसणमग्गणाए अणुवादेण चक्खुदंसणं, अचक्खुदंसणं, ओहिदंसणं, केवलदंसणं य चउब्भेदा संति।

१. चक्खुदंसणं - चक्खुणा जं पयासइ दीसइ तं चक्खुदंसणं विंति।

सम्यग्दर्शन को सामान्य और सम्यग्ज्ञान को विशेष धर्म कहा है।

जै.सि.को./भाग-२/पृ.४०४

दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम वा क्षय से उत्पन्न निराकार सत्ता मात्र ग्राही उपयोग कर चेतना की परिणति विशेष को **दर्शनोपयोग** कहते है। अर्थात् विषय विषयी के सन्निपात (संयोग) को दर्शन कहते है। इसमें वस्तु के विशेष आकार आदि का ग्रहण नहीं होता।

दर्शनोपयोग के भेद-

दंसणाणुवदेण अत्थि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी केवलदंसणी चेदि।

ष.ख./१/१,१/सू/१३१/३७८

दंसणं चदुधा चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं॥ **द्रव्यसंग्रह**

दर्शनमार्गणा के अनुवाद से चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन ये चार भेद है।

चक्षुदर्शन- चक्खुणा जं पयासइ दीसइ तं चक्खुदंसणं विंति।

पं.सं./१/१३९-१४१

चक्खुइंदियेण जो पयत्थस्स सामण्णांसं पकासिदं हवइ, अहवा णिरक्खदि, तं चक्खुदंसणं वट्टदि।

२. अचक्खुदंसणं - सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खु त्ति।

सेसचदुइंदियेहिं मणेहिं य जं सामण्णं पडिभासं हवइ, तं अचक्खुदंसणं जाणणीयं।

३. ओहिदंसणं - तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइं पच्चक्खं।

सव्वलहुपमाणेण आदीए सव्वमहाण अंतिमसकंधपज्जत्तं जित्तियं मुत्तदव्वं संति, तं जं पच्चक्खं णिरक्खदि, तं ओहिणाणं भासदे।

४. केवलदंसणं - लोायालोयवितिमिरो सो केवलदंसणुज्जीवो।

बहुजादीए बहुपयारस्स य चंदसूरियादीणं उज्जोदं दु परिमिदखेत्तम्मि एव पावंति, अत्थत्तो ते अल्पेण एव पयत्था अल्पपरिमाणे पकासिदं करेंति। किंतु जं केवलदंसणं उज्जोदं अत्थि, अयं लोयं अलोयं य पि पकासिदं करेदि, अत्थत्तो सव्वचराचरजगदं फट्टं पस्सदि।

चक्षु इंद्रिय के द्वारा जो पदार्थ का सामान्य अंश प्रकाशित होता है, अथवा दिखाई देता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं।

अचक्षुदर्शन- सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खु त्ति। पं.सं./१/१३९-१४१ शेष चार इन्द्रियों से और मन से जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिये।

अवधिदर्शन- तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइं पच्चक्खं। पं.सं./१/१३९-१४१

सब लघु प्रमाण से आदि लेकर सर्वमहान् अंतिम स्कंध तक जितने मूर्तद्रव्य है, उन्हें जो प्रत्यक्ष देखता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

केवलदर्शन- लोायालोयवितिमिरो सो केवलदंसणुज्जीवो। पं.सं./१/१३९-१४१ बहुत जाति के और बहुत प्रकार के चन्द्र सूर्य आदि के उद्यात तो परिमित क्षेत्र में ही पाये जाते हैं। अर्थात् वे थोड़े से ही पदार्थों को अल्प परिमाण प्रकाशित करते हैं। किन्तु जो केवलदर्शन उद्योत है, यह लोक को और अलोक को भी प्रकाशित करता है, अर्थात् सर्व चराचर जगत् को स्पष्ट देखता है।

६. उवओगे योगे य अंतरो

उवओगो अयं एगपदात्तगो अत्थि। (उव+ओगो) जस्स अत्थो अत्थि जोगस्स समीवं णिकटं वा।

जोगो - युज् धातूए णिप्पण्णं घञ् पत्तये सदि भावात्थे जोगो सद्दं णिम्मिदं। जस्स अत्थो अत्थि जोग्गं, संलग्गं, लग्गं वा।

युज्यत इति योगः।

जो संबंधो अत्थत्तो संयोगं पावइ सो जोगो अत्थि।

योजनं योगः संबंधः इति यावत्।

संबंधकरणस्स णाम जोगो।

आगमगंथेसु जोगो अणेगत्थवायी अत्थि- वरिसाजोगो, तरुमूलजोगो, आतावणजोगो, अब्भावकासजोगो य एते सव्वसाहणापहाणे सदि आयारमूलगो अत्थि। एतेण जोगेण एव जोगीसद्दस्स सिज्झदि।

कायवाङ्मनःकर्मयोगः॥

कम्मजोगो कम्मासवेसु कारणभूदं किरिया अत्थि एतं जोगो कहदि।

उपयोग और योग में अंतर

उपयोग यह एक पदात्मक है। (उप+योग) जिसका अर्थ है योग के समीप या निकट।

योग- युज् धातु से निष्पन्न घञ् प्रत्यय भावार्थ में होने पर योग शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है लगना, जुड़ना आदि।

युज्यत इति योगः। ध./१/१,१,४/१३९/९

जो संबंध अर्थात् संयोग को प्राप्त हो वह योग है।

योजनं योगः संबंधः इति यावत्। रा.वा.७/१३/४/५४०/३

संबंध करने का नाम योग है।

आगमग्रन्थों में योग अनेकार्थवाची है- वर्षायोग, वृक्षमूलयोग, आतापनयोग, अभ्रावकाशयोग, ये सभी साधना प्रधान होने से आचारमूलक है। इस योग से ही योगी शब्द की सिद्धि होती है। **आ.सा./४**

कायवाङ्मनःकर्मयोगः॥ त.सू./६/१

कर्मयोग कर्मास्रव में कारणभूत क्रिया है इसे योग कहते हैं।

किं जोणो णाम? जीवपदेसाणं परिप्फंदो संकोच-विकोचममणसरुवओ।
मणवयणकायपोग्गलांबणेण जीवपदेसाणं परिपप्फंदो।
अथवात्म-प्रदेशानां संकोचविकोचो योगः।

अयं जोगो वियारी अप्पणो परिणमणरुवं चेदणं अत्थि, एतम्मि य कारणभूदं पोग्गलिगमणवयणकाया अचेदणपरिणामा संति।

अयं जोगो अप्पपदेसेसु परिफंदणं चलणं उप्पज्जइ। सेसं विस्ससोवचयरुवं कम्माणवग्गणाकम्मरुवे परिणदिं हवइ, एता किरिया विसेसेण णवीणकम्माणं आसवं हवइ। एतस्स जोगस्स पमुहकारणं मणवयणकायाणं पवित्ति अत्थि। कारणे कज्जस्स उवचारत्तो मणवयणकायाणं पि जोगो अयं सण्णा हवइ। तहा य पडिक्कं पृथु-पृथु रुवेण जोगं मण्णिदूणं तस्स भेय-पभेया पि कहंति।

मणोजोगो, वयणजोगो, कायजोगो य (मणस्स णिमित्तेण, वयणस्स णिमित्तेण, कायस्स य णिमित्तेण अप्पपदेसाणं परिफंदणं)।

किं जोणो णाम? जीवपदेसाणं परिप्फंदो संकोच-विकोचममणसरुवओ।

ध.भाग१०/४,२,४,१७५ पृ. ४३७, पं.७

मणवयणकायपोग्गलांबणेण जीवपदेसाणं परिपप्फंदो। **ध.पु.७/२,१,१५/१७/१०**

अथवात्म-प्रदेशानां संकोचविकोचो योगः। **ध.पु.१-१,१,४पृ.१४०पं.२**

यह योग विकारी आत्मा का परिणमन रूप चेतन है तथा इसमें कारणभूत पौद्गलिक मन-वचन-काय अचेतन परिणाम है।

यह योग आत्मप्रदेशों में परिस्पंदन हलन-चलन उत्पन्न करता है। सिसे विस्रसोपचय रूप कार्माण वर्गणा कर्मरूप में से परिणित होती है, इस क्रिया विशेष से नवीन कर्मों का आस्रव होता है। इस योग का मुख्य कारण मन-वचन-काय की प्रवृत्ति है। कारण में काय्र का उपचार करने से मन-वचन-काय की भी योग यह संज्ञा हो जाती है। तथा प्रत्येक को पृथक्-पृथक् रूप से योग मानकर उसके भेद-प्रभेद भी कहे गये हैं।

मनोयोग, वचनयोग, काययोग (मन के निमित्त से, वचन के निमित्त से और काय के निमित्त से होने वाले आत्म प्रदेशों का परिस्पंदन)।

उत्तरभेयो – सच्चमणोजोगो, असच्चमणोजोगो, उहयमणोजोगो, अणुहयमणोजोगो, सच्चवयणजोगो, असच्चवयणजोगो, उहयवयणजोगो, अणुहयवयणजोगो, कायजोगस्स सत्तपयारा – ओदारिगकायजोगो, ओदारिगमिस्सकायजोगो, वेक्कियिगकायजोगो, वेक्कियिगमिस्सकायजोगो, आहारगकायजोगो, आहारगमिस्सकायजोगो, कम्माणकायजोगो य। उत्तरोत्तरभेयो वित्थारेण असंखादं संति।

जोगो उवओगो य कहंचि भिण्णो, एगो ण। यदोहि उवओगो सव्वसंसारीसिद्धजीवेसु, अयोगकेवलिसु पावंति, किंतु जोगो सव्वाणं ण संति। उवओगो जीवस्स सहावो अत्थि। संसारीजीवाणं अपेक्खाए इयं भिण्णदा सव्वहा णत्थि। उवओगो चेदणं जोगं य अचेदणं। इत्थं पि सव्वहा णत्थि, यदोहि आगमे अप्पपदेसाणं संकोचविकोचाणं जोगो सण्णा अत्थि।

विसेसो – जीवाणं गमणकालम्मि अप्पपदेसाणं संकुचणस्स वित्थारणस्स य णियमो णत्थि, यदोहि सिद्धत्तस्स पढमसमये अयं जीवो तत्तो लोयाग्गसिहरे गमिदूणं विराजमाणं हवइ। एतम्मि कालम्मि ताणं अप्पपदेसेसु परिफंदणस्स अभावो अत्थि,

---

उत्तर भेद– सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग, सत्य वचनयोग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग, अनुभय वचनयोग, काययोग के ७ प्रकार – औदारिक काय योग, औदारिक मिश्रकाययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग, आहारक काययोग, आहारक मिश्रकाययोग, कार्माण काययोग। उत्तरोत्तर भेद विस्तार से असंख्यात है।

योग और उपयोग कथंचित् भिन्न है, एक नहीं, क्योंकि उपयोग सम्पूर्ण संसारी व सिद्ध जीवों में तथा अयोग केवलियों में पाया जाता है किनतु योग सभी के नहीं है। उपयोग जीव का स्वभाव है। संसारी जीवों की अपेक्षा यह भिन्नता सर्वथा नहीं है। उपयोग चेतन तथा योग अचेतन है। ऐसा भी सर्वथा नहीं है, क्योंकि आगम में आत्मप्रदेशों के संकोच और विकोच (फैलना) की योग संज्ञा है।

विशेष– जीवों के गमनकाल में आत्मप्रदेशों के संकुचन, विस्तरण का नियम नहीं है, क्योंकि सिद्ध होने के प्रथम समय में यह जीव यहाँ से लोकाग्र शिखर पर जाकर विराजमान होता है। इस काल में उनके आत्मप्रदेशों में परिस्पंदन का

जोगस्स अभावे सदि अत्थत्तो ताणं जोगो ण हवइ।

अट्ठकम्मेण मुत्तदसाए जीवस्स उड्ढगमणकिरिया दु ताणं सहाविगगणुं अत्थि। इयं पवित्ति कम्मोदयेण विणा अत्थि। सवट्ठिदपदेसा ण छुड्डिऊणं जं जीवदव्वस्स सवायवेहिं परिफंदणं हवइ, सो अयोगो। अयं कम्मक्खयेण सयत्तो उप्पज्जदि, अत्तो सक्किये सदि पि सरीरीजीवा अयोगी सिज्झंति, ताणं पदेसेसु जोगपरिवट्टणरुवं किरियाए अभावो अत्थि।

यदोहि जत्थ कारणे कज्जस्स उवचारं करीअ। तत्थ पोग्गलिगमणवयणकायाणं कम्मं पि जोगो भणदि। जं उवचारमत्तं अत्थि, समीचीणं णत्थि। जहा– तच्चत्थसुत्ते **कायवाङ्मनःकर्मयोगः** कहिदूणं फट्ठं करीअ। उवचारेण तत्तपरियं अत्थि –

इह खलु पौद्गलिक.....परमार्थः।

कारणगदधम्मस्स कज्जम्मि उवचारं पसिद्धरुवेण पावइ, किंतु तं उवचारं एव अत्थि। परमत्थं ण, अत्थ उवचारेण मत्तं सहकारिदा णिमित्तं अत्थि।

अभाव है योग का अभाव होने से अर्थात् उनके योग नहीं होता।

ध.७-२,१,३३,७७/२

अष्ट कर्म से मुक्त होने की दशा में जीव की ऊर्ध्वगमन क्रिया तो उसका स्वाभाविक गुण है। यह प्रवृत्ति कर्मोदय के विना है। स्वस्थित प्रदेशों को न छोड़कर जो जीव द्रव्य का अपने अवयवों द्वारा परिस्पंदन होता है वह अयोग है। यह कर्मक्षय से स्वतः उत्पन्न होता है, अतः सक्रिय होते हुये भी शरीरी जीव अयोगी सिद्ध होते हैं उनके प्रदेशों में योग परिवर्तन रूप क्रिया का अभाव है।

ध.७-२,१,१५,१७/१०

क्योंकि जहाँ कारण में कार्य का उपचार किया जाता है। वहाँ पर पौद्गलिक मन-वचन-काय के कर्म को भी योग कहा जाता है। जो उपचार मात्र है वास्तविक नहीं। जैसाकि तत्त्वार्थ सूत्र में **कायवाङ्मनःकर्मयोगः** कहकर स्पष्ट किया गया है। उपचार से तात्पर्य है–

इह खलु पौद्गलिक.....परमार्थः। स.सि. गा.१०५टीका

कारणगत धर्म का कार्य में उपचार जगत में प्रसिद्ध रूप से पाया जाता है किन्तु वह उपचार ही है। परमार्थ नहीं, यहाँ उपचार से मात्र सहकारिता निमित्त है।

अत्थ सिज्झीअ, जं मणवयणकायाणं णिमित्तकारणं, अवलंबेण वा अप्पपदेसाणं परिफंदणं जोगो कहदि। मणवयणकाया पोग्गलिगा संति, एताणं फट्टं उल्लेखो आयरिअसिरि वीरसेणायरिओ धवलाटीआए करीअ। अतो सिज्झदि जं जोगो कहंचि चेदणं, ता कहंचि अचेदणं। अतो उवचारकरणे ताणं मणवयणकायजोगा इयं सण्णा हवंति। ताणं य पमुहत्तिभेया संति। वित्थारेण तिण्हं पंचदस भेया हवंति। अणेगभेये सदि पि एगजीवस्स जुगवं एगमेव जोगो पावदि।

गुणट्ठाणेसु जोगो - पढमगुणट्ठाणत्तो संयोगकेवलीपज्जत्तं सव्वसंसारीजीवाणं जोगो हवंति। अयोगकेवली सव्वसिद्धजीवेसु जोगस्स अभावो अत्थि।

जोगो

१. जोगो कहंचि चेदणं, ता कहंचि पोग्गलिग-अचेदणं।

२. जोगो पढमगुणट्ठाणत्तो संयोगकेवलीपज्जत्तं हवइ।

३. जोगो संसारीजीवाणं हवइ।

यहाँ सिद्ध हुआ कि मन-वचन-काय के निमित्त कारण या अवलंब से आत्मप्रदेशों के परिस्पंदन को योग कहते हैं। मन-वचन-काय पौद्गलिक है, इसका स्पष्ट उल्लेख आचार्यश्री वीरसेनाचार्य ने धवला टीका में किया है। इस प्रकार सिद्ध हुआ है कि योग कथंचित् चेतन है तो कथंचित् अचेतन पौद्गलिक है। अतः उपचार करने पर उनकी मन-वचन-काय योग यह संज्ञा हो जाती है। और उसके मुख्य तीन भेद हो जाते हैं। विस्तार से तीनों के १५ भेद होते हैं। अनेक भेद होने पर भी एक जीव के एक साथ एक ही योग पाया जाता है।

गो.जी. मू. २४२/५०५

गुणस्थानों में योग- प्रथम से संयोग केवली तेरहवें गुणस्थान तक सभी संसारी जीवों के योग पाया जाता है। अयोग केवली एवं सभी सिद्ध जीवों में योग का अभाव है।

योग

१.योग कथंचित् चेतन है तो कथंचित् पौद्गलिक अचेतन है।

२. योग प्रथम से तेरहवें गुणस्थान तक होता है।

३. योग संसारी जीवों के होता है।

४. मणवयणकायाणं परिफंदणं णाम जोगो।

उवओगो

१. उवओगो चेदणं।

२. उवओगो पढमगुणट्ठाणत्तो चउद्दसगुणट्ठाणपज्जत्तं हवदि।

३. उवओगो संसारीमुत्ताणं दोण्हं हवदि।

४. अप्पणो अणुविहायीपरिणामो णाम उवओगो।

गुणट्ठाणेसु संभवजोगो

गुणट्ठाणं	**सम्भवजोगो**	**असम्भवजोगाणं णाम**
मिच्छादिट्ठि	१३	आहारगो, आहारगमिस्सो=२
सासादणं	१३	आहारगो, आहारगमिस्सो=२
मिस्सं	१०	आहारगो, आहारगमिस्सो, ओदयिगो, वेक्किरियगो मिस्सं, कम्माण=५
असंयदो	१३	आहारगो, आहारगमिस्सो=२

---

४. मन-वचन-काय के हलन-चलन को योग कहते है।

उपयोग

१.उपयोग चेतन है।

२. उपयोग प्रथम से चौदहवें पर्यन्त तक होता है।

३. उपयोग संसारी और मुक्त दोनों के होता है।

४. आत्मा के अनुविधायी परिणाम को उपयोग कहते है।

गुणस्थानों में सम्भव योग-

गुणस्थान	सम्भव योग	असम्भव योग के नाम
मिथ्यादृष्टि	१३	आहारक, आहारक मिश्र=२
सासादन	१३	आहारक, आहारक मिश्र=२
मिश्र	१०	आहारक, आहारक मिश्र, औदारिक, वैक्रियिक मिश्र, कार्माण=५
असंयत	१३	आहारक, आहारक मिश्र=२

देसविरदो	९	ओदारिगमिस्सं, वेक्किरियगो, मिस्सं,आहारगो, आहारग–मिस्सं, कम्माण=६
पमत्तं	११	ओदारिगो,वेक्किरियगो, वेक्किरियग–मिस्सं, कम्माण=४
अपमत्तं	९	ओदारिगो, वेक्किरियगो, वेक्किरियग– मिस्सं, आहारगो, आहारगमिस्सं, कम्माण=६
अपुव्वकरणं	९	ओदारिगो, वेक्किरियगो, वेक्किरियग–मिस्सं, आहारगो, आहारगमिस्सं, कम्माण=६
अणिवित्तिकरणं	९	ओदारिगो, वेक्किरियगो, वेक्किरियग–मिस्सं, आहारगो, आहारगमिस्सं, कम्माण=६

देशविरत	९	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण=६
प्रमत्त	११	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, कार्माण=४
अप्रमत्त	९	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण=६
अपूर्वकरण	९	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण=६
अनिवृत्तिकरण	९	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण=६

सुहुमसाम्परायो	९	ओदारिगो, वेक्किरियगो, वेक्किरियग–मिस्सं, आहारगो, आहारगमिस्सं, कम्माण=६
उवसांदमोहो	९	ओदारिगमस्सं,वेक्किरियगो, वेक्किरियग–मिस्सं, आहारगो, आहारगमिस्सं, कम्माण=६
खीणकसायो	९	ओदारिगमस्सं,वेक्किरियगो, वेक्किरियग– मिस्सं, आहारगो, आहारगमिस्सं, कम्माण=६
सयोगिकेवली	७	वेक्किरियगो,वेक्किरियगमिस्सं, आहारगो, आहारगमिस्सं, असच्चं उहयं वा मणोवयणजोगो=८

जोगे संभवजीवसमासो– वयणजोगो कायजोगो द्वींदियजीवहिंतो असण्णीपंचेंदियजीवपज्जत्तं हवंति। काययोगो एगेंदियजीवाणं हवंति। मणोजोगो वयणजोगो य पज्जात्तगाणं एव हवंति, अपज्जात्तगाणं ण हवंति। कायजोगो पज्जात्तगा

सूक्ष्म साम्पराय	९	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण=६
उपशांत मोह	९	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण=६
क्षीणकषाय	९	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण=६
सयोगिकेवली	७	वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, असत्य व उभय मनोवचनयोग=८

योग में संभव जीव समास– वचन योग और काययोग द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों तक होता है। काययोग एकेन्द्रिय जीवों के होता है। मनोयोग और वचनयोग पर्याप्तकों के ही होते हैं अपर्याप्तकों के नहीं होते हैं।

पि हवइ, अपज्जात्तगा य पि हवइ। ओदारिगकाययोगपज्जात्तगाणं, ओदारिगमिस्सकायजोगो य अपज्जात्तगाणं हवंति। वेक्किरियगकायजोगो पज्जात्तगाणं, वेक्किरियगमिस्सकायजोगो य अपज्जात्तगाणं हवंति। आहारगकायजोगो पज्जात्तगाणं, आहारगमिस्सकायजोगो य अपज्जात्तगाणं हवंति।

सामण्णविसेसगुणाणं कहणं – कहणकरणस्स पद्धति दोपयारेण संति– सामण्णेण विसेसेण य। सामण्णगुणेण तत्तपरियं अत्थि, जं सव्वदव्वेसु पावदि, तं सामण्णं अत्थि। जहा– जित्तियो पि जीवो अत्थि, सव्वम्मि जीवत्तं पावइ। विसेसगुणेण तत्तपरियं अत्थि, जं एगदव्वं अण्णदव्वत्तो पृथु करेदि, तं विसेसगुणं। जहा– पुरिसो, इत्थी, तिरियो इच्छेवादि। सामण्णविसेसगुणाणं विवक्खाए वत्थुं जाणंति। एअं विवक्खं णयेण अहिगरुवेण बुज्झिदुं सक्कंति।

णयस्स लक्खणं –प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नयः श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्त्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः॥

काययोग पर्याप्तकों को भी होता है और अपर्याप्तकों को भी होता है। औदारिक काययोग पर्याप्तकों के और औदारिक मिश्र काययोग अपर्याप्तकों के होता है। वैक्रियिक काययोग पर्याप्तकों के और वैक्रियिक मिश्र काययोग अपर्याप्तकों के होता है। आहारक काययोग पर्याप्तकों के और आहारक मिश्र काययोग अपर्याप्तकों के होता है।

सामान्य-विशेष गुणों का कथन-कथन करने की पद्धति दो प्रकार से सामान्य और विशेष। सामान्य गुण से तात्पर्य है जो सम्पूर्ण द्रव्य में पाया जाता है वह सामान्य है। जैसे- जितने भी जीव है सभी में जीवत्व पाया जाता है। विशेष गुण से तात्पर्य है जो एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से पृथक् करें उसे विशेष गुण कहते हैं। जैसे- पुरुष, स्त्री, तिर्यञ्च इत्यादि। सामान्य और विशेष गुणों की विवक्षा द्वारा वस्तु को जानते हैं। इस विविक्षा को नय द्वारा और अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

नय का लक्षण-प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नयः श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्त्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः॥

पमाणेण सम्मत्तपयारेण गहणित्ता वत्थुए एगधम्मं अत्थत्तो अंसं गाहगा णाणं णयं भणदि। अहवा सुदणाणस्स विकप्पं णयं हवदि। णादाए अहिपायं णयं कहदि। अहवा जं णाणासहावहिंतो दूरीकरिदूणं कस्सावि एगसहावे वत्थुं पत्तं करादि, सो णयो अत्थि। णयस्स दोभागेसु विभत्तो करीअ- ववहारो णिच्चयो य।

णिच्चयणयो - भेदोपचारितया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः।

भेयोवचारेहिं वत्थुए ववहारं करेदि सो ववहारणयो।

ववहारणयो - अभेदनानुचारितया वस्तुनिश्चीयत इति निश्चयः॥२०४॥

अभेय-अणुवचरिदणयेहिं जो णयो वत्थुए णिच्चयं करेदि सो णिच्चयणयो।

अतो भगवदो जिणेण्द्दो सामण्णविसेसाणं णिच्चयववहारणयाणं दिट्ठिं पदाणं करित्ता उवओगस्स संदब्भे कहदि।

अट्ठचदुणाण दंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणंङ्क

ववहारणयेण जीवस्स लक्खणं अट्ठपयारस्स णाणं, चदुपयारस्स य दंसणोवओगो

प्रमाण के द्वारा सम्यक् प्रकार ग्रहण की गई वस्तु के एक धर्म अर्थात् अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। अथवा श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं। ज्ञाता के अभिप्राया को नय कहते हैं। अथ्ज्ञवा जो नाना स्वभावों से हटाकर किसी एक स्वभाव में वस्तु को प्राप्त कराता है वह नय है। नय को दो भागों में विभक्त किया है- व्यवहार नय और निश्चय नय।

निश्चय नय- भेद और उपचार से वस्तु का व्यवहार करता है वह व्यवहार नय है।

व्यवहार नय- अभेद और अनुपचारिता नय से जो नय वस्तु का निश्चय करें वह निश्चय नय है।

अतः भगवज्जिनेन्द्र ने सामान्य-विशेष और निश्चय-व्यवहार नय की दृष्टि को प्रदान करते हुये उपयोग के सन्दर्भ में कहा है।

अट्ठचदुणाण दंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं॥६॥

व्यवहार नय से जीव का लक्षण आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का

अत्थि। इदं सामण्णजीवस्स लक्खणं। एतम्मि संसारीमुत्त-एकेंदियादिजीवाणं भेयाणं विवक्खा ण संति। परंतु सुद्धणिच्चयणयेण सुद्ध-अखण्डकेवलणाणं दंसणं य एव जीवस्स लक्खणं वट्टदि।

चेदणाए परिणदिविसेसस्स णाम उवओगो। चेदणा सामण्णगुणं, णाणदंसणाइँ एते दोण्णि एताणं पज्जाया अवत्थाओ य संति, तं उवओगो भासदि। एतेसु दंसणं दु अंतरचिदपकासस्स सामण्णपडिभासं अत्थि, णाणं य बाहिरपयत्थाणं विसेसपडिभासं कहदि। सविकप्पस्स कारणं वाखेयं वट्टदि। एते दोण्णि एव उवओगाणं अणेयभेय-पभेया संति। सो एव उवओगो जदो बाहिर सुहासुहपयत्थाणं आस्सयं करेदि, ता सुहासुहविकप्परुवेण हवदि, जदो य केवल-अंतराप्पणो आस्सयं करेदि, ता णिव्विप्पस्स कारणं सुद्ध भणदि। सुहासुहावओगा संसारस्स कारणं। अतो परमत्थेण हेयो, सुद्धोवओगो य मोक्खस्स आणंदस्स य कारणं वट्टदि, तं उवादेयो।

अप्पा उवओगप्पा उवओगो णाणदंसणं भणिदो।
सो वि सुहो असुहो वा उवओगो अप्पणो होदिङ्क

दर्शनोपयोग है। यह सामान्य जीव का लक्षण है। इसमें संसारी मुक्त एकेन्द्रिय आदि जीव के भेदों की विवक्षा नहीं है। परन्तु शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध अखण्ड केवलज्ञान और दर्शन ही जीव का लक्षण है।

चेतना की परिणति विशेष का नाम उपयोग है। चेतना सामान्य गुण है और ज्ञान-दर्शन ये दो इसकी पर्यायें एवं अवस्थायें है, इन्हीं को उपयोग कहते हैं। निमें दर्शन तो अन्तर्चित्प्रकाश का सामान्य प्रतिभास है और ज्ञान बाह्य पदार्थों के विशेष प्रतिभास को कहते हैं। सविकल्प होने के कारण व्याख्येय है। इन दोनों ही उपयोगों के अनेक भेद-प्रभेद है। यही उपयोग जब बाहर में शुभ या अशुभ पदार्थों का आश्रय करता है तो शुभ और अशुभ विकल्प रूप हो जाता है। और जब केवल अन्तरात्मा का आश्रय करता है तो निर्विकल्प होने के कारण शुद्ध कहलाता है। शुभ-अशुभ उपयोग संसार का कारण है अत: परमार्थ से हेय है और शुद्धोपयोग मोक्ष व आनन्द का कारण है इसलिये उपादेय है।

अप्पा उवओगप्पा उवओगो णाणदंसणं भणिदो।
सो वि सुहो असुहो वा उवओगो अप्पणो होदि॥१५५॥

अप्पा उवओगत्तगो, उवओगो य णाणदंसणाइँ कहदि। अप्पणो य सो उवओगो सुहासुहाइँ हवदि।

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं॥

जिणवरदेवो भावा त्तिपयारेण उत्तं - सुहभावो, असुहभावो, सुद्धभावो य।

एतस्स णाणदंसणात्तग-उवओगस्स दोभेया उत्तं - सुद्धं असुद्धं य। तेसु सुद्धोवओगो निरुवओगो अत्थि, असुद्धोवओगो य सोवओगो। सो असुद्धोवओगो सुहासुहाइँ दोभेयरुवं अत्थि, यदोहि उवरागो विसुद्धिरुवं संकलेसरुवं य दोपयारस्स अत्थि।

<u>असुहोवओगस्स लक्खणं</u> - विपरीतः पापस्य तु आस्रवहेतुं विजानीहि॥

जीवेसु दया, सम्मत्तदंसणणाणरुवी य उवओगो पुण्यकम्मस्स आसवस्स कारणं अत्थि। एतस्स य विवरीयं णिद्दयभावं, मिच्छाणाणदंसणरुवं य उवओगो पावकम्मस्स आसवस्स कारणं जाणणीयं।

अशुभस्य आर्त्त-रौद्रम्॥

आत्मा उपयोगात्मक है उपयोग ज्ञान-दर्शन को कहा गया है। और आत्मा का वह उपयोग शुभ और अशुभ होता है।

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं॥

जिनवरदेव ने भाव तीन प्रकार के कहे हैं- शुभ भाव, अशुभ भाव और शुद्ध भाव।

इस ज्ञान-दर्शनात्मक उपयोग के दो भेद कहे हैं- शुद्ध और अशुद्ध। उनमें से शुद्ध उपयोग है निरुपयोग है और अशुद्ध उपयोग सोपयोग है। वह अशुद्धोपयोग शुभ और अशुभ दो भेदरूप है, क्योंकि उपराग विशुद्धिरूप व संक्लेशरूप दो प्रकार का है।

अशुभोपयोग का लक्षण-

विपरीतः पापस्य तु आस्रवहेतुं विजानीहि॥

जीवों पर दया तथा सम्यग्दर्शन ज्ञानरूपी उपयोग पुण्यकर्म के आस्रव के कारण है तथा इनके विपरीत निर्दयपना और मिथ्याज्ञान-दर्शनरूप उपयोग पापकर्म के आस्रव के कारण जानना चाहिये।

अशुभस्य आर्त्त-रौद्रम्॥

अत्तरोद्दज्झाणाइँ असुहभावं।
जस्स उवओगो विसयकसायेसु मग्गो, कुसुदि-कुवियार-कुसंगदिसु संलग्गो, उग्गो, उम्मग्गे य पवित्तो तस्स असुहोवओगो। सुहोवओगस्स लक्खणे पसस्तरागं चित्तपसादं सुहं इति कहदि। जत्थ रागद्वेसा, मोहो, अपसस्तरागो हवदि तत्थ असुहोवओगो।

सुहोवओगस्स लक्खणं -

पुण्णास्सासवभूदा अणुकंपा सुद्ध एव उवओगो।

जीवेसु दया मणवयणस्स सुद्धकिरिया, सुद्धदंसणरुवं य उवओगो एते पुण्णकम्मस्स आसवस्स कारणं।

शुभः धर्म्यम्।।

धम्मज्झाणं सुहभावो।
देवसत्थगुरूणं पूयाए, दाणे, सुसीलेसु उववासादिगेसु य लीणो अप्पा सुहोवओगी। जो जिणेण्द्दं जाणदि, सिद्धाणं अणगाराणं य श्रद्धाणं करेइ, पंचपरमेट्ठीसु अणुरत्तो, जीवा य पइ अणुकंपाजुत्तो तस्स सो सुहोवओगो।

आर्त्त-रौद्र ध्यान अशुभभाव है।
जिसका उपयोग विषय-कषायों में मग्न, कु-श्रुति, कुविचार और कुसंगति में लगा हुआ, उग्र है तथा उन्मार्ग में लगा हुआ उसके अशुभोपयोग है। शुभोपयोग के लक्षण में प्रशस्त राग तथा चित्त प्रसाद को शुभ बताया गया है। जहाँ राग-द्वेष, मोह व अप्रशस्त राग होता है वहाँ अशुभ उपयोग है।

शुभोपयोग का लक्षण-

पुण्णास्सासवभूदा अणुकंपा सुद्ध एव उवओगो।

जीवों पर दया, वचन, काय की क्रिया, शुद्धदर्शन ज्ञान रूप उपयोग ये पुण्यकर्म के आस्रव के कारण है।

शुभः धर्म्यम्।।

धर्मध्यान शुभभाव है।
देव-शास्त्र-गुरू की पूजा में तथा दान में एवं सुशीलों में और उपवासादिक में लीन आत्मा शुभोपयोगात्मक है। जो जिनेन्द्रों को जानता है, सिद्धों तथा अनगारों की श्रद्धा करता है, अर्थात् पंचपरमेष्ठी में अनुरक्त है और जीवों के प्रति अनुकम्पा युक्त है उसके वह शुभोपयोग है।

सुद्धोवओगास्स लक्खणं – सुद्धं सुद्धसहावो अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
सुद्धभावो अत्थि सो सयसुद्धसहावो अप्पम्मि एव अत्थि इदि णायव्वं।

सुविदितपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति॥

जो पयत्थाणं सुत्ताणं य फट्टुरुवेण जाणदि, जो संयमतवजुत्ता, जो वीयरायो, जो सुहासुहसमाणा, ते समणा सुद्धोवओगी।

तिण्हं उवओगेसु गुणट्ठाणं – मिच्छत्तं, सासादणं, मिस्सं य एतेसु तिण्हं गुणट्ठाणेसु तारतम्येण अवरोहकमेण असुहोवओगो। पच्छा अविरदसम्मत्तदिट्ठि, देसविरदो, पमत्तविरदो य एतेसु तिण्हं गुणट्ठाणेसु तारतम्येण आरोहकमेण सुहोवओगो। पच्छा अपमत्तत्तो खीणकसायपज्जत्तं छहगुणट्ठाणेसु तारतम्येण आरोहकमेण सुद्धोवओगो। सयोगिजिणो अयोगिजिणो य एतेसु दोण्णि गुणट्ठाणेसु सुद्धोवओगस्स फलं वट्टदि। पवित्तिपरग–सुहोवओगो सत्तमगुणट्ठाणे पि हवइ। जयधवला, महाधवलादीसु एतस्स उवरिं पि सुहोवओगो मण्णंते। जं समयं वयं सामायिये मोण्णं हवमो, गुत्तिआदीसु य लीणं हवमो, तदेव सुद्धोवओगो हवदि, अयं कमो।

शुद्धोपयोग का लक्षण– शुद्धभाव है सो अपना शुद्ध स्वभाव आप में ही है ऐसा जानना चाहिये।

जिन्होंने पदार्थों और सूत्रों को भलीभांति जान लिया है जो संयम और तपयुक्त है जो वीतराग है जिन्हें सुख–दु:ख समान हैं, ऐसे श्रमण को शुद्धोपयोगी कहा गया है।

तीनों उपयोगों में गुणस्थान– मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से घटता हुआ अशुभ उपयोग है। इसके बाद अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत तथा प्रमत्तविरत इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से बढ़ता हुआ शुभोपयोग है। उसके बाद अप्रमत्त से लेकर क्षीणकषाय तक छह गुणस्थानों में तारतम्य से बढ़ता हुआ शुद्धोपयोग है। सयोगजिन और अयोगजिन इन दो गुणस्थानों में शुद्धोपयोग का फल है। प्रवृत्त्यात्मक शुभोपयोग सप्तम गुणस्थान में भी रहता है। जय धवला, महाधवलादि में इसके ऊपर भी शुभोपयोग माना है। जिस समय हम सामायिक में मौन हो जाते हैं या गुप्ति आदि में लीन हो जाते हैं, वस्तुत: उस सयम शुद्धोपयोग होता है यह क्रम रखा है।

धम्मेण परिणदप्पा जदि सुद्धसंपयोग जुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं।।

धम्मेण परिणदप्पा जइ सुद्धोवओगजुत्तो हवदि, ता सो मोक्खसुहं पावइ, जइ य सुहोवओगी हवदि ता सग्गसुहं पावइ।

एतेण पयारेण उवओगो अप्पणो एव लक्खणं। लक्खलक्खणाणं दिट्ठीए भेयत्तो पि दोण्णि एगमेव अत्थि, यदोहि अप्पा उवओगेण विणा णत्थि, उवओगो य अप्पणा विणा णत्थि। संसारस्स पडिक्कं अप्पम्मि उवओगो हवदि, जम्मि य उवओगो हवदि सो अप्पा। जीवो असुद्धभावेहिं संसारे परिभमदि, तं सो सुद्धपरिणदिं पइ सयपवित्तिं करदु। जदो अप्पणो परमप्पणो य भेयं फट्टुरुवेण बुज्झदि, तदो सो सुद्धोवओगपरिणदप्पा हवदि। एगदिवसो सो सुद्धपरिणदप्पणो सव-सरुवं पादूणं चेतण्णाणंदे लीणा सिद्धावत्थां पावदि।

इदि उवओगो विमस्सो।

धम्मेण परिणदप्पा जदि सुद्धसंपयोग जुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं।।

धर्म से परिणित आत्मा यदि शुद्धोपयोग सहित होता है तो वह मोक्षसुख को प्राप्त करता है, और यदि शुभोपयोग वाला होता है तो स्वर्गसुख को प्राप्त होता है।

इस प्रकार से उपयोग आत्मा का ही लक्षण है। लक्ष्य और लक्षण की दृष्टि से भेद होते हुये भी दोनों एक ही है, क्योंकि आत्मा उपयोग के बिना नहीं है, और उपयोग आत्मा के बिना नहीं है। संसार की प्रत्येक आत्मा में उपयोग पाया जाता है और जिसमें उपयोग पाया जाता है वह आत्मा है। मात्र अन्तर है जीव वर्तमान में जो संसार में भटक रहा है वह शुद्ध परिणति से परिणित नहीं है अपितु अशुद्ध परिणति में ही मग्न है। जब तक जीव शुद्ध परिणति में नहीं आयेगा तब तक जीव के शुद्धोपयोग की दशा का निर्माण नहीं होगा। जिसको आत्मा और परमात्मा का भेद स्पष्ट रीति से समझ में आ जाता है वही वास्तव में शुद्धोपयोग से परिणित आत्मा होती है और एक दिवस वह शुद्ध परिणित आत्मा के स्व-स्वरूप को प्राप्त कर चैतन्य-आनन्द में लीन सिद्ध अवस्था को प्राप्त करती है।

इति उपयोग विमर्श।।